आसा की वार

ॐ अन्नपूर्णा ®
Charitable Trust
WZ-5A/1, Ram Nagar,
Choukhandi Chowk,
New Delhi-110018

विषय सूची

प्रकाशक की ओर से 7
पाठकों से निवेदन 9

रचयिता और रचना 11
आसा की वार 17
सलोक और पउड़ी १ 17
सलोक और पउड़ी २ 21
सलोक और पउड़ी ३ 31
सलोक और पउड़ी ४ 37
सलोक और पउड़ी ५ 42
सलोक और पउड़ी ६ 49
सलोक और पउड़ी ७ 56
सलोक और पउड़ी ८ 63
सलोक और पउड़ी ९ 66
सलोक और पउड़ी १० 71
सलोक और पउड़ी ११ 78
सलोक और पउड़ी १२ 87
सलोक और पउड़ी १३ 96
सलोक और पउड़ी १४ 105
सलोक और पउड़ी १५ 110

सलोक और पउड़ी १६ 117
सलोक और पउड़ी १७ 121
सलोक और पउड़ी १८ 125
सलोक और पउड़ी १९ 131
सलोक और पउड़ी २० 139
सलोक और पउड़ी २१ 147
सलोक और पउड़ी २२ 151
सलोक और पउड़ी २३ 157
सलोक और पउड़ी २४ 160

संदेश 165

संदर्भ सूची 167
संदर्भ ग्रंथ 171
हमारे प्रकाशन 173

रचयिता और रचना

रचयिता

गुरु नानक देव जी (1469-1539 ई.) मध्यकाल के दौरान पंजाब में गुरुमत की धारा प्रवाहित करनेवाले पहले पूर्ण सतगुरु थे। आपकी गणना संसार के महान् पूर्ण पुरुषों में की जाती है। भाई गुरदास जी गुरु साहिब के बारे में लिखते हैं:

सतिगुर नानक प्रगटिआ मिटी धुंध जग चानण होआ।[1]

आप फ़रमाते हैं कि गुरु नानक देव जी के संसार में प्रकट होने से अज्ञानता का अंधकार दूर हुआ तथा हर तरफ़ सच्चे ज्ञान का प्रकाश फैल गया। भाई गुरदास जी ने यह संकेत भी किया है: 'बारह पंथ एकत्र कर गुरमुख गाडी राह चलाइआ।'[2] गुरु साहिब के उपदेश के कारण अनेक प्रकार के मत-मतांतरों में विभाजित लोग गुरुमत के सीधे और सच्चे मार्ग पर आ गए।

प्रभु प्राप्ति के सच्चे साधन और मार्ग का प्रचार करने के लिए गुरु नानक देव जी ने कई यात्राएँ कीं। आप द्वारा देश-विदेश में की गई इन यात्राओं को उदासियों का नाम दिया गया। गुरु साहिब देश की चारों दिशाओं में गए और विदेश में लंका, ईरान, इराक़, अफ़गानिस्तान तथा सऊदी अरब आदि भी गए। इन उदासियों के समय आप अनेक धर्म स्थानों पर गए तथा आपका अनेक विद्वानों, पुजारियों, योगियों, सिद्धों, नाथों, पीरों और फ़कीरों आदि से वार्तालाप हुआ। इस प्रकार अनेक स्थानों पर कई लोग गुरु साहिब के श्रद्धालु तथा अनुयायी बन गए।

इन उदासियों के पश्चात् गुरु नानक देव जी ज़िला गुरदासपुर में रावी दरिया के किनारे बसे कस्बे करतारपुर (पाकिस्तान) में रहने लगे। करतारपुर में आप स्वयं खेती करते थे और अपनी संगति में आनेवालों को भी हक़-हलाल

की कमाई करने, बाँटकर खाने और नाम का अभ्यास करने का उपदेश देते थे। गुरु साहिब द्वारा सब धर्मों को एक समान प्रेम और आदर मिलता था। हिंदू और मुसलमान समान रूप से आपके प्रति श्रद्धा रखते थे।

गुरु नानक देव जी की प्रसिद्धि से प्रभावित होकर भाई लहिणा जी भी करतारपुर आपकी संगति में आए तथा उन्होंने आपकी शरण ले ली। गुरु साहिब ने अपनी कृपा दृष्टि द्वारा भाई लहिणे को अपना ही रूप बना लिया। आपने निज धाम जाने से पहले अपने पुत्रों के बजाय अपने सच्चे शिष्य भाई लहिणा को सतगुरु का पद सौंपा तथा इनका नाम अंगद देव रखा। गुरु साहिब अपनी सांसारिक यात्रा पूरी करके 22 सितंबर, 1539 ई. को ज्योति-जोत समा गए।

वाणी

गुरु नानक देव जी के दिव्य व्यक्तित्व की तरह आपकी वाणी भी आध्यात्मिक ज्ञान का अलौकिक भंडार है। आकार, प्रकार तथा मात्रा की दृष्टि से गुरु साहिब का आध्यात्मिक काव्य बहुत विशाल तथा समृद्ध है। आप की प्रमुख रचनाएँ *जप जी, सिध गोसटि, दखणी ओअंकार, बारह माहा, पटी, माझ की वार, आसा की वार,* तथा *मलार की वार* हैं। इनके अलावा आप ने पहरे, अलाहणीआं, कुचजी-सुचजी, थिती आदि की भी रचना की है। आप की वाणी को बीस रागों में रखा गया है। वाणी का विवरण इस प्रकार है: मूल मंत्र-1; चउपदे-206; असटपदियाँ-121; छंत-24; पउड़ियाँ-116; सलोक-260; पहरे-2; अलाहणीआं-5; कुचजी-सुचजी-2; सोलहे-22; पदे-199; कुल 958।

गुरु नानक देव जी की वाणी दिव्य प्रकाश का सहज प्रवाह है। यह वाणी रहस्यमयी अनुभव को सिद्धांत, तर्क तथा भाव के सुंदर तालमेल में प्रस्तुत करती है। यह वाणी श्रद्धालु के धार्मिक भाव को तथा कला प्रेमी की सौंदर्य संबंधी भूख को तृप्त करती है। यह वाणी उस अगम सृजनहार को अनुभव करने की युक्ति का वर्णन करती है तथा पाठक के लिए प्रेरणादायक मार्ग प्रशस्त करती है। इस वाणी का सत्य जितना सुंदर और रमणीय है, उतना ही प्रेरणादायक, आदर्शमय, कल्याणकारी तथा आशा से ओतप्रोत भी है।

इस पुस्तक में गुरु नानक देव जी की प्रसिद्ध वाणी *आसा की वार* पर विचार किया गया है। *आसा की वार** को विशुद्ध साहित्यिक दृष्टि से देखने पर पता चलता है कि गुरु साहिब ने वीर रस के काव्यरूप 'वार' को शांत रस या आध्यात्मिक काव्यरूप में परिवर्तित कर दिया। आपने एक कथानक मूलक काव्यरूप को विचार मूलक काव्यरूप बना दिया। इसके साथ-साथ आपने बाहरी स्थूल संघर्ष को अंतर्मुखी सूक्ष्म संघर्ष में बदल दिया तथा बाहरी रणभूमि के स्थान पर मनुष्य के अपने मन को रणभूमि बना दिया। आपने योद्धा या राजा का यशोगान करने के स्थान पर कर्ता पुरुष, शब्द, हुक्म, नाम और गुरुमुख का यशोगान किया है। आपने विकारों तथा मनमुखता का विनाश और गुरुमुखता की विजय दिखाई है।

संक्षिप्त परिचय

गुरु साहिबान की वाणी का मुख्य उद्देश्य प्रभु प्राप्ति के साधन और मार्ग का उल्लेख करना है। इसकी अभिव्यक्ति के लिए काव्यरूप को माध्यम बनाया गया है ताकि विचारों को रसदायक और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया जा सके।

गुरु साहिबान ने दूसरे काव्यरूपों की तरह वार के सर्वप्रिय काव्यरूप को भी अपने विचार प्रस्तुत करने का माध्यम बनाया। यह कार्य गुरु नानक देव जी ने आरंभ किया। आपने तीन वारों की रचना की। उसके बाद गुरु अमरदास जी ने चार, गुरु रामदास जी ने आठ और गुरु अर्जुन देव जी ने छः वारों की रचना की। इन 21 वारों के अतिरिक्त आदि ग्रन्थ में बलवंड और सतै नाम के डूमों की एक वार भी संकलित है। इस वार में उन्होंने गुरु साहिबान का यश गाया है तथा गुरु गद्दी का एक पातशाही से दूसरी पातशाही तक पहुँचने का विवरण दिया है।

वार का मुख्य उद्देश्य युद्ध के वर्णन द्वारा योद्धा की शूरवीरता का यश गाना होता था। गुरु नानक देव जी ने अपनी वारों में अपने-आपको प्रभु का यश

---

* आदि ग्रन्थ में सभी वारों के साथ 'की' का प्रयोग किया गया है, जैसे कि *मलार की वार*। कुछ विद्वानों ने *आसा दी वार* लिखा है तथा कुछेक ने *आसा की वार*।

गानेवाला 'ढाडी' कहा है। वार में वीर रस प्रधान होता है। वीर रस काव्य की परंपरा बहुत प्राचीन है। रामायण और महाभारत वीर रस से भरपूर हैं। हिंदी साहित्य में *पृथ्वी राज रासो, बीसल देव रासो* आदि में वीर रस प्रधान है। प्राचीन अरबी साहित्य में क़सीदा नामक काव्यरूप में वीर रस प्रधान होता था। क़सीदा लिखनेवाले अधिकतर कवि स्वयं भी योद्धा हुआ करते थे।

पंजाब में गुरु नानक देव जी से पहले भी वार लिखने और गाने का रिवाज था। भट्ट, मिरासी, भराई आदि इन वारों को गाँव की महफ़िलों, विवाह समारोहों और मेलों आदि में डफ़ली और सारंगियों पर एक विशेष ध्वनि या तर्ज़ पर गाते थे।

वार के काव्यरूप की शुरुआत के बारे में कुछ कह पाना मुश्किल है, परंतु इतनी बात स्पष्ट है कि गुरु साहिब के पूर्वकालीन कवियों की वारों के भी उदाहरण उपलब्ध हैं। गुरु अर्जुन देव जी ने आदि ग्रन्थ में संकलित वारों को जिन नौ लोक वारों की तर्ज़ पर गाने का आदेश दिया है, उनमें से चार वारें—टुंडे अस राजै की वार, सिकंदर बराहम की वार, मूसे की वार और लला बहलीमा की वार—गुरु साहिबान के समय से पहले की हैं। पाँच वारें गुरु साहिबान के समय की हैं: मलक मुरीद तथा चंद्रहड़ा सोहीया की वार, वार राय कमाल की मउजदी, वार जोधे वीरै पूरबाणी की, वार राय महिमे हसने की और वार राणै कैलास तथा मालदे की।

लोक वार और आध्यात्मिक वार

वार शब्द का भाव वार्ता है, जिसका उद्देश्य कोई घटना या कहानी बयान करना होता है। वारें दो प्रकार की हैं: लौकिक और आध्यात्मिक। लोक वारों में दो पक्ष होते थे क्योंकि दो पक्षों के बिना युद्ध असंभव है। इसके विपरीत गुरु साहिबान द्वारा सृजित आध्यात्मिक वार में केवल प्रभु की महिमा का गान है। इस वार का नायक कोई व्यक्ति नहीं बल्कि सर्वशक्तिमान् कर्ता पुरुष है।

इसी विचार का दूसरा पहलू यह है कि लोक वार ऐतिहासिक और पौराणिक कहानियों पर आधारित होती है, जबकि आध्यात्मिक वार विचारों, संकल्पों या सिद्धांतों पर आधारित होती है। इसमें घटनाओं का वृत्तांत या प्रबंध

नहीं होता बल्कि विचारों, संकल्पों और सिद्धांतों का वर्णन और प्रबंध होता है।

लोक वारें सामाजिक विषयों से जुड़ी होती हैं। ये वारें शूरवीर योद्धाओं की गाथा द्वारा किसी विशेष कुल, जाति, संप्रदाय, समाज या राष्ट्र का गौरव बढ़ाने का प्रयत्न करती हैं। इस वार में विशेष रूप से सदाचार की महिमा भी हो सकती है। आध्यात्मिक वार में समाज या सदाचार मुख्य नहीं होते, अध्यात्म मुख्य होता है। इसमें संघर्ष अंतर्मुखी होता है, बाहरी नहीं। इसमें संघर्ष दो विरोधी पक्षों में नहीं अपितु व्यक्ति के अपने ही मन की मायामय और पारमार्थिक वृत्तियों के बीच में होता है।

लोक वार में योद्धा के साथी और समर्थक होते हैं और उनके पास युद्ध के अस्त्र-शस्त्र होते हैं। आध्यात्मिक वार में सतगुरु, प्रभुरूपी योद्धा के कार्यों की पूर्ति का साधन बनता है। सतगुरु में भी प्रभु स्वयं बैठा होता है। प्रभु और सतगुरु जो कुछ करते हैं, नाम द्वारा करते हैं और नाम प्रभु का रूप होता है। इसलिए इस वार में यह दर्शाया गया है कि जो कुछ करता है, प्रभु ही करता है।

लोक वार और आध्यात्मिक वार का परस्पर मेल केवल रूप और शैली तक सीमित है। दोनों प्रकार की वारों का वर्णन हार-जीत की शैली में है। दोनों वारें पउड़ियों में रची गई हैं। दोनों में कठोर शब्दावली का प्रयोग किया गया है और दोनों में निशानी या सिरखंडी छंद का प्रयोग किया गया है, क्योंकि दोनों तरह की वारें समान ध्वनियों और तर्ज़ों पर गाई जाती हैं। इससे पता चलता है कि गुरु साहिबान ने वार का रूप बदले बिना ही इस प्रचलित काव्यरूप को बिलकुल अलग प्रयोजन की सिद्धि का माध्यम बनाया है। यह पुराने बर्तन में नई चीज़ डालने का कार्य है, जिसे गुरु साहिबान ने बहुत सफलतापूर्वक निभाया है। संसार के सर्वोत्तम आध्यात्मिक तत्त्वज्ञान को संसार की सर्वोत्तम कला का रूप प्रदान कर देना, गुरु साहिबान की दिव्य प्रतिभा की अनुपम देन है।

गुरु साहिबान ने वारों की रचना मूलत: पउड़ियों के रूप में की थी, परंतु 'ढाढी' लोग इन्हें गाते समय, इनके साथ श्लोक भी जोड़ लेते थे। इस तरह वार गाए जाने का समय अधिक हो जाता था तथा पउड़ियों में प्रकट हुए भावों को गहराई और विशालता भी प्राप्त होती थी। इसलिए गुरु अर्जुन देव जी ने आदि ग्रन्थ के संपादन के समय जो श्लोक पूर्वकालीन गुरु साहिबान

की वारों के साथ जुड़ चुके थे, उन्हें उसी तरह रखकर पउड़ियों की वृत्ति के अनुसार कई अन्य श्लोक भी जोड़कर वार को पउड़ीबद्ध रूप देने के बजाय श्लोक-पउड़ीबद्ध रूप दे दिया।

आसा की वार के वर्तमान रूप में श्लोकों की संख्या पउड़ियों से अधिक है। 24 पउड़ियों के साथ लगभग 59 श्लोक शामिल हैं। प्रत्येक पउड़ी में चार चरण पूरे तथा एक चरण आधा है। प्रत्येक पउड़ी के पहले चार चरणों का स्वरूप लगभग समान है। इसी प्रकार प्रत्येक पउड़ी के आधे चरण का स्वरूप भी समान है। इसके विपरीत श्लोक दो पंक्तियों के भी हैं तथा 28 पंक्तियों के भी। अलग-अलग श्लोकों की पंक्तियाँ अलग-अलग आकार की हैं। पउड़ियाँ मुख्य रूप से आध्यात्मिक विचारों पर आधारित हैं, जबकि श्लोकों में सदाचार तथा आध्यात्मिक भावों के साथ-साथ बहुत से सामाजिक, भाईचारे तथा धार्मिक प्रयोजन भी शामिल हैं। श्लोकों में उस समय समाज में प्रचलित कुरीतियों, अलग-अलग धर्मों के कर्मकांडों तथा भक्ति के बहिर्मुखी साधनों का भी उल्लेख है। पउड़ियों के भाव सर्वकालीन, सर्वव्यापक तथा सर्वसाँझे हैं। श्लोकों में स्थानीय तथा सामयिक विषय भी शामिल हैं। पउड़ियों में अकालपुरुष, सतगुरु, नाम और हुक्म की स्तुति प्रधान है। श्लोकों में स्तुति के साथ-साथ आलोचना तथा खंडन का रंग भी है। इनमें तुलनात्मक रंग भी है और उपदेशात्मक रंग भी। श्लोक पउड़ियों से कहीं अधिक बहुपक्षीय हैं, परंतु इनका वास्तविक उद्देश्य पउड़ियों में प्राप्त आध्यात्मिक विचारों का ही विस्तार करना है।

आसा की वार को टुंडे अस राजै की वार की तर्ज़ पर गाने का संकेत दिया गया है, जिसकी एक पउड़ी इस प्रकार है:

भबिकिआ शेर सदूल राइ रण मारू बज्जे।
सुलतान ख़ान बड सूरमे विच रण दे गज्जे।
खत लिखे टुंडे असराज नूं पातसाही अज्जे।
टिका सारंग बाप ने दित्ता भर लज्जे।
फते पाइ असराज जी साही पर सज्जे।

आसा की वार

आसा महला १
वार सलोका नाल
सलोक भी महले पहिले के लिखे
टुंडे अस राजै की धुनी॥
आदि ग्रन्थ, पृ. 462-475

सलोक और पउड़ी १

सलोक महला १

बलिहारी गुर आपणे दिउहाड़ी सद वार॥
जिन माणस ते देवते कीए करत न लागी वार॥१॥

दिउहाड़ी=दिन में; **सद वार**=सौ बार, अनेक बार; **वार**=देर।

सरलार्थ: इस श्लोक को मंगलाचरण कहा जाता है। प्राचीन काल से ही कवि महाकाव्य या कोई अन्य रचना आरंभ करने से पहले अपने इष्ट की स्तुति, आराधना और कार्य की सिद्धि के लिए प्रार्थना करते आए हैं। इस मंगलाचरण में गुरु नानक देव जी कहते हैं: मैं अपने गुरु पर बार-बार बलिहारी जाता हूँ, अपने-आपको उस पर न्योछावर करता हूँ, जिसने मनुष्य को देवता बना दिया तथा इस कार्य को पूर्ण करने में बिलकुल भी देर नहीं लगाई।

महला २

जे सउ चंदा उगवह सूरज चड़ह हजार॥
एते चानण होदिआं गुर बिन घोर अंधार॥ २॥

सउ=सौ।

सरलार्थ: इस श्लोक में गुरु अंगद देव जी कहते हैं कि चाहे सैकड़ों चंद्रमा और हज़ारों सूर्य उदय हो जाएँ, उन सबके प्रकाश के बावजूद गुरु के बिना घोर अंधकार है।

❖ गुरु साहिब सतगुरु को निराकार प्रभु का ही साकार रूप स्वीकार करते हुए, उनका यशोगान करते हैं। उक्त श्लोकों में गुरु साहिब ग्रंथों और शास्त्रों से प्राप्त होनेवाले ज्ञान की तुलना, सतगुरु की कृपा से प्राप्त होनेवाले व्यक्तिगत अनुभव से कर रहे हैं। गुरु अमरदास जी का कथन है:

कहै नानक एह नेत्र अंध से सतिगुर मिलिऐ दिब द्रिसट होई॥[1]

जब तक सतगुरु नहीं मिला था, आँखें होने के बावजूद भी अंधों जैसी हालत थी, क्योंकि प्रभु सर्वव्यापक होते हुए भी दिखाई नहीं देता था। सतगुरु के उपदेश पर चलकर दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गई, जिससे आंतरिक रूहानी जगत् के दृश्य स्पष्ट दिखाई देने लगे और प्रभु के साक्षात् दर्शन भी हो गए। *जप जी* के आरंभ में दिए गए मूल मंत्र में पहले अकालपुरुष की महिमा की गई है फिर 'गुर प्रसाद' द्वारा सतगुरु की। गुरु साहिबान द्वारा रचित अन्य विशाल वाणियों में मंगलाचरण द्वारा सतगुरु की महिमा की गई है।

महला १

नानक गुरू न चेतनी मन आपणै सुचेत॥
छुटे तिल बूआड़ जिउ सुंञे अंदर खेत॥
खेतै अंदर छुटिआ कहो नानक सउ नाह॥
फलीअह फुलीअह बपुड़े भी तन विच सुआह॥ ३॥

न चेतनी=याद नहीं करते; **बूआड़**=तिलों जैसा अन्य पौधा; **सुंञे**=खाली; **नाह**=मालिक।

सरलार्थ: गुरु नानक देव जी चेतावनी देते हैं: जो लोग अपने-आपको बहुत ज्ञानी, ध्यानी, चतुर, बुद्धिमान् समझते हैं, परंतु सतगुरु की शरण लेकर प्रभु की भक्ति नहीं करते, उनकी अवस्था खेत में अकेले खड़े बूआड़ के पौधे जैसी है, जिन्हें खेत में अकेले ही छोड़ दिया जाता है। बूआड़ के पौधे के सौ मालिक होते हैं भाव वह बिना मालिक के होता है। बूआड़ का पौधा बिलकुल तिलों के पौधे की तरह ही विकसित होता है, परंतु उसके अंदर तिल नहीं, राख-सी होती है।

❖ पहले दो श्लोकों में सतगुरु की महिमा का वर्णन करके इस श्लोक में मनमुख की तुलना बूआड़ के पौधे से करते हैं। बूआड़ का पौधा देखने में बिलकुल तिलों के पौधे जैसा होता है। उसे फलियाँ भी तिलों जैसी ही लगती हैं, परंतु उन फलियों में राख-सी भरी होती है। खेत का मालिक कटाई के समय तिलों के पौधे काट लेता है परंतु बूआड़ के पौधे छोड़ देता है। वे खेत में अकेले खड़े रह जाते हैं। वे केवल जलाने के काम आते हैं, चाहे कोई भी उन्हें काट कर ले जाए। इसी प्रकार गुरु विहीन व्यक्ति संसार में प्रगति करते हैं, मायामय दृष्टि से ख़ूब उन्नति भी करते हैं, परंतु उनके अंदर केवल मायारूपी राख होती है। उनका हृदय प्रभु प्रेम से रिक्त होता है। वे संसाररूपी खेत में अकेले खड़े रहते हैं। उनका अनमोल जन्म व्यर्थ चला जाता है। उन्हें मालिक के साथ मिलाप का सौभाग्य प्राप्त नहीं होता।

पउड़ी

आपीन्है आप साजिओ आपीन्है रचिओ नाउ॥
दुयी कुदरत साजीऐ कर आसण डिठो चाउ॥
दाता करता आप तूं तुस देवह करह पसाउ॥
तूं जाणोई सभसै दे लैसह जिंद कवाउ॥
कर आसण डिठो चाउ॥ १॥

आपीन्है=अपने-आप ही; **नाउ**=नाम; **कुदरत**=रचना शक्ति; **चाउ**=खेल-तमाशा; **तुस**=प्रसन्न होकर; **कवाउ**=हुक्म।

सरलार्थ: यह *आसा की वार* की पहली पउड़ी है। गुरु नानक देव जी कहते हैं: हे प्रभु! पहले आपने अपनी और अपने नाम की रचना की फिर सृष्टि की रचना की। आप सृष्टि की रचना करके इसमें व्याप्त हो गए और इससे निर्लेप होकर प्रेमपूर्वक इसे निहारने लगे। हे प्रभु! आप ही एकमात्र कर्ता तथा दाता हो। जो कुछ करते हो आप ही करते हो और जो कुछ देते हो आप ही देते हो। आप ही सबको प्रसन्न होकर देते हो और रचना का निरंतर प्रसार करते हो। आप सबकुछ जानते हो। सब को जीवन देनेवाले भी आप हो तथा उसे वापस लेनेवाले भी आप ही हो। हे प्रभु! आप अपने परमपद के आसन पर बैठकर स्वयं सृजित सृष्टि को प्रसन्न होकर देख रहे हो।

❖ गुरु साहिब पूर्ण अद्वैत पर विशेष बल दे रहे हैं। आप दृढ़तापूर्वक कहते हैं कि जो कुछ है, प्रभु है; जो कुछ है, प्रभु से है; जो कुछ है, प्रभु का रूप है और जो कुछ है, उसमें प्रभु समाया हुआ है। आपने *जप जी* का आरंभ '१ ओ' से किया है, जिसका भाव है कि केवल प्रभु ही सत्य है। अगर किसी का अस्तित्व सत्य है तो वह प्रभु का है। आपने मूलमंत्र में प्रभु को 'सैभं' कहा है। आप *जप जी* में कहते हैं: '*थापिआ न जाए कीता न होए॥ आपे आप निरंजन सोए॥*'[2] वह प्रभु अपने-आप से है। आप कहते हैं: ***आपीन्है आप साजिओ***—वह प्रभु अपना कर्ता स्वयं है। वह अपने अस्तित्व के लिए किसी दूसरे पर निर्भर नहीं। ***आपीन्है रचिओ नाउ॥***—प्रभु ने अपनी तरह ही अपने नाम की भी रचना की है। ***दुयी कुदरत साजीऐ कर आसण डिठो चाउ॥***—प्रभु ने नाम द्वारा संपूर्ण रचना की उत्पत्ति की है। *दुयी कुदरत*—नाम और प्रभु एक है, सृष्टि 'दुई' या द्वैत है। सृष्टि की रचना नाम द्वारा की गई है। इससे स्पष्ट होता है कि 'नाम' से गुरु साहिब का अभिप्राय प्रभु की सृजनात्मक शक्ति है। गुरु साहिब *जप जी* में कहते हैं: '*जेता कीता तेता नाउ॥ विण नावै नाही को थाउ॥*'[3] परमात्मा ने जो कुछ उत्पन्न किया है, शब्द यानी नाम द्वारा किया है। शब्द या नाम सर्वव्यापक है।

दाता करता आप तूं तुस देवह करह पसाउ॥—हे प्रभु! कर्ता भी तू है और दाता भी तू है। तू स्वयं ही सबकुछ उत्पन्न करता है और जिसे जो कुछ देता है, स्वयं देता है। तू स्वयं ही अपने द्वारा बनाई सृष्टि का प्रतिपालक है। मेरे प्रभु! तू जो कुछ देता है, दया भाव से प्रसन्न होकर देता है।

तूं जाणोई सभसै दे लैसह जिंद कवाउ॥—हे सर्वशक्तिमान् दयालु प्रभु! तू सर्वज्ञाता और अंतर्यामी है। तुझ से कुछ भी छिपा हुआ नहीं और तेरी दृष्टि से बाहर कुछ भी नहीं। तू अपनी इच्छा से स्वयं ही जीवन बख़्शता है और स्वयं ही अपने हुक्म से वापस ले लेता है। जीवों का जन्म-मरण सब तेरे हाथ में है। गुरु साहिब आगे स्पष्ट करेंगे—'*जंमण मरणा हुकम है भाणै आवै जाए॥*' आप फ़रमाते हैं:

साचा सच सोई अवर न कोई॥ जिन सिरजी तिन ही फुन गोई॥[4]

रचना को उत्पन्न करनेवाला भी वह प्रभु है और इसका नाश करनेवाला भी वही है।

कर आसण डिठो चाउ॥—वह कर्ता पुरुष सृष्टि की रचना करके इससे निर्लेप होकर प्रसन्नतापूर्वक इसे निहार रहा है। गुरु नानक देव जी *जप जी* में कहते हैं: '*सच खंड वसै निरंकार॥ कर कर वेखै नदर निहाल॥*' आप आगे कहते हैं: '*वेखै विगसै कर वीचार*'[5] इसी भाव को गुरु साहिब '*कर आसण डिठो चाउ॥*' द्वारा प्रकट कर रहे हैं।

सलोक और पउड़ी २

सलोक महला १

सचे तेरे खंड सचे ब्रहमंड॥ सचे तेरे लोअ सचे आकार॥
सचे तेरे करणे सरब बीचार॥ सचा तेरा अमर सचा दीबाण॥
सचा तेरा हुकम सचा फुरमाण॥ सचा तेरा करम सचा नीसाण॥
सचे तुध आखह लख करोड़॥ सचै सभ ताण सचै सभ जोर॥
सची तेरी सिफत सची सालाह॥ सची तेरी कुदरत सचे पातिसाह॥
नानक सच धिआइन सच॥ जो मर जंमे सो कच निकच॥१॥

खंड=सृष्टि के अलग-अलग भाग; **लोअ**=लोक; **करणे**=किए हुए कार्य; **अमर**=हुक्म; **दीबाण**=दरबार; **ताण**=ज़ोर; **कच निकच**=कच्चा, नाशवान्।

सरलार्थ: गुरु नानक देव जी प्रभु द्वारा बनाई सृष्टि की महिमा करते हुए फ़रमाते हैं: हे प्रभु! तेरे द्वारा सृजित सृष्टि के खंड, लोक और आकार सच्चे हैं। तेरे सब कार्य और विचार भी सत्य हैं। तेरा राज्य सत्य है, तेरा दरबार सत्य है। तेरा हुक्म सत्य है तथा हुक्मनामा भी सत्य है। तेरी रहमत का निशान (तेरा नाम) भी सत्य है। वे लाखों-करोड़ों जीव जो तुझे सत्य मानकर तेरा गुणगान करते हैं, तेरा भजन-सुमिरन करते हैं, वे भी सत्य हैं। अनगिनत लोगों को तेरे द्वारा बख़्शा बल भी सत्य है। तेरी स्तुति करनेवाले अनगिनत लोग भी सत्य हैं। हे पातशाह! तू भी सत्य है, तेरी रचना भी सत्य है। जो उस सच्चे और अविनाशी प्रभु का ध्यान करते हैं, वे भी उसकी तरह निश्चल तथा अविनाशी हो जाते हैं। जो जन्म-मरण (आवागमन) के चक्कर में हैं, वे कच्चे यानी नश्वर हैं।

❖ गुरु साहिब श्लोक की पहली आठ पंक्तियों में प्रभु द्वारा बनाई सृष्टि, उसके कार्यों, उसकी सोच, उसके राज्य, उसके हुक्म, उसके दरबार और उसकी दया को सत्य कहते हुए उसकी महिमा गा रहे हैं। गुरु साहिब के इस श्लोक के बाद गुरु अंगद देव जी का श्लोक इस प्रकार आरंभ होता है: '*इह जग सचै की है कोठड़ी सचे का विच वास॥ इकन्हा हुकम समाए लए इकन्हा हुकमे करे विणास॥*'

सची तेरी सिफत सची सालाह॥ सची तेरी कुदरत सचे पातिसाह॥—हे शहंशाह! तू भी सत्य है, तेरी महिमा भी सत्य है और सृष्टि का सृजन करनेवाली तेरी शक्ति भी सत्य है।

गुरु साहिब ने 'सच धिआइन सच' को 'जो मर जंमे सो कच निकच' के साथ जोड़ा है। सत्य दो प्रकार का है: एक सापेक्ष (Relative) और दूसरा निरपेक्ष (Absolute)। गुरु साहिब समझाते हैं कि रचना में रचयिता व्याप्त है, इसलिए रचना सत्य है, परंतु रचयिता रचना तक सीमित नहीं है। वह रचना से निर्लेप

भी है। वह निर्लेप निरंकार प्रभु परम सत्य है। जब तक उसकी सत्ता रचना में व्याप्त रहती है, रचना क़ायम रहती है। जब वह इसमें से अपनी सत्ता निकाल लेता है तो यह नष्ट हो जाती है।

नानक सच धिआइन सच॥ जो मर जंमे सो कच निकच॥—संसार में दो प्रकार के लोग हैं: एक वे जो रचना और उसके पदार्थों से प्रेम करते हैं। गुरु साहिब ने उन्हें कच्चे या कूड़ियार कहा है। गुरु साहिब ने ऐसे लोगों को 'दूजे भाउ' वाले लोग भी कहा है। वे हमेशा आवागमन के चक्कर से बँधे रहते हैं। दूसरे वे सचियार हैं, जो एक प्रभु के साथ प्रेम करते हैं। ऐसे भाग्यशाली सचियार उस सच्चे की भक्ति द्वारा नश्वर रचना से मुक्त हो जाते हैं। उनका आवागमन के चक्कर से छुटकारा हो जाता है तथा वे उस प्रभु में समाकर उसका ही रूप हो जाते हैं। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

खंड पताल दीप सभ लोआ॥ सभ कालै वस आप प्रभ कीआ॥
निहचल एक आप अबिनासी सो निहचल जो तिसह धिआइदा॥[6]

त्रिलोकी की संपूर्ण रचना जन्म-मरण के नियमाधीन है। वह प्रभु निश्चल और अमर है। जो उस अविनाशी प्रभु का ध्यान करते हैं, वे उसी का रूप हो जाते हैं।

महला १

वडी वडिआई जा वडा नाउ॥ वडी वडिआई जा सच निआउ॥
वडी वडिआई जा निहचल थाउ॥ वडी वडिआई जाणै आलाउ॥
वडी वडिआई बुझै सभ भाउ॥ वडी वडिआई जा पुछ न दात॥
वडी वडिआई जा आपे आप॥ नानक कार न कथनी जाए॥
कीता करणा सरब रजाए॥ २॥

निआउ=न्याय, इनसाफ़; **थाउ**=ठिकाना; **आलाउ**=बोल बोलना, बातचीत।

सरलार्थ: पिछले श्लोक के भाव को आगे बढ़ाते हुए गुरु नानक देव जी कहते हैं: प्रभु की महिमा अपरंपार है, क्योंकि उसका नाम भी

अपार और श्रेष्ठ है। उसकी महिमा बड़ी है, क्योंकि उसका न्याय सच्चाई से युक्त है। उसकी महिमा उत्तम है, क्योंकि उसका आसन निश्चल है, उसका निवास स्थान अविनाशी है तथा वह हरेक के दिल की बात जानता है। उसकी महिमा अपार है, क्योंकि वह सब के हावभाव समझता है। वह जो भी दात बख़्शता है, किसी से पूछता नहीं है। उसकी सबसे बड़ी महिमा यह है कि जो कुछ है, वह स्वयं है। सत्य तो यह है कि उसकी करनी वर्णन से परे है। जो उसने किया है, वह भी उसके हुक्म के अनुसार हुआ है तथा वह जो कुछ भी करेगा, अपनी रज़ा के अनुसार ही करेगा।

❖ ***वडी वडिआई जा वडा नाउ॥***—गुरु साहिब ने पहली पउड़ी में कर्ता और नाम को एक कहा है। वही भाव यहाँ प्रकट कर रहे हैं कि प्रभु की सर्वश्रेष्ठ महिमा उसके नाम के रूप में प्रकट होती है। वह जो कुछ करता है अपने नाम द्वारा करता है। गुरु साहिब *जप जी* की 24 वीं पउड़ी में फ़रमाते हैं: 'वडा साहिब ऊचा थाउ॥ ऊचे उपर ऊचा नाउ॥'[7] उस सर्वोच्च प्रभु का निवास स्थान भी ऊँचे से ऊँचा है तथा उसका नाम भी बड़े से बड़ा है। गुरु साहिबान की वाणी में नाम को ही सृष्टि का कर्ता, रक्षक, प्रतिपालक और मुक्तिदाता कहा गया है। गुरु अमरदास जी का कथन है: 'नामे उपजै नामे बिनसै नामे सच समाए॥'[8] नाम बड़ा है क्योंकि नाम ही जीवनदाता है, नाम ही नाशकर्ता है और नाम ही सच्चे प्रभु के साथ मिलाता है।

वडी वडिआई जा सच निआउ॥—उस कर्ता की महिमा बड़ी है, क्योंकि उसका न्याय सच्चा है। गुरु रामदास जी का कथन है: 'हर* की वडिआई वडी है जा निआउ है धरम का॥'[9] गुरु अर्जुन देव जी का कथन है: 'हर का एक अचंभउ देखिआ मेरे लाल जीउ जो करे सो धरम निआए राम॥'[10] उस प्रभु के दरबार में पूर्ण निष्पक्षता है। वहाँ दूध का दूध और पानी का पानी हो जाता है।

वडी वडिआई जा निहचल थाउ॥—प्रभु की महिमा बड़ी है, क्योंकि वह स्वयं भी निश्चल है और उसका निवास स्थान भी निश्चल है। आप कहते हैं: 'निहचल महल नही छाइआ माइआ॥'[11]

* आदि ग्रन्थ की वाणी में प्रयोग हुए 'हर' शब्द का अर्थ है—हरि।

वडी वडिआई जाणै आलाउ॥ वडी वडिआई बुझै सभ भाउ॥—प्रभु की महिमा बड़ी है क्योंकि वह हरेक की बात समझता है। कोई चाहे जिस भाषा में बोले, वह समझ लेता है। 'भाउ' का अर्थ प्रेम भी है तथा भाव भी। केवल यही नहीं, वह प्रत्येक हावभाव समझता है। वह अंतर्यामी बिना बोले ही सबके दिलों की बात जानता है।

सिंध के कामिल सूफ़ी दरवेश शाह लतीफ़ के कलाम में एक अनपढ़ गडरिये का उदाहरण इस प्रकार दिया गया है:

एक भोला-भाला गडरिया अमृत वेला तक, एक तरफ़ ज़मीन पर लेटा लसबेला की भाषा में अल्लाह के आगे विनती करता रहता है, जबकि दूसरे लोग गहरी नींद में सो रहे होते हैं। उस बेचारे के पास अल्लाह से बात करने का इसके अलावा और कोई साधन नहीं।[12]

वह ज़मीन पर लेटा हुआ दर्द भरे लहजे में लस्सी भाषा में अपने भक्ति भाव को प्रकट करता है। उसकी ख़ुशकिस्मती देखो कि अल्लाह उस पर बहुत प्रसन्न हो गया और उसे अपनी पालकी में बिठाकर साथ ले गया। सय्यद कहता है: कुल मालिक उस पर प्रसन्न था और उसने उसी रात उसे परम पद बख़्श दिया।[13]

अल्लाह अरबी, फ़ारसी, संस्कृत आदि में गिने-चुने शब्दों द्वारा की गई इबादत को नहीं, बल्कि सच्चे दिल से उठी हूक (पुकार) सुनता है। अल्लाह दिल की भाषा सुनता है। वह प्रेम की भाषा बोलता और सुनता है। इसलिए इस बात में कोई हैरानी नहीं होनी चाहिए, यदि अल्लाह विद्वानों द्वारा की गई अलंकृत छंदोबद्ध कविता की जगह एक अनपढ़ के दिल से निकली सादगी भरी पुकार से प्रसन्न होकर उसे ऊँची रूहानी अवस्था बख़्श दे। गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं:

का भाषा का संसकृत प्रेम चाहिऐ साँच।
काम जु आवै कामरी का लै करिअ कुमाच॥[14]

भाषा चाहे साधारण हो या विद्वानों की संस्कृत हो, इसमें कोई अंतर नहीं, हृदय में सच्चा प्रेम होना आवश्यक है। यदि कंबली से गुज़ारा हो सकता है, तो ज़रीदार रेशमी दुशाले की क्या आवश्यकता है?

वडी वडिआई जा पुछ न दात॥—उस दाता की एक अन्य महिमा यह है कि वह किसी से पूछ कर बख़्शिश नहीं करता। वह जो कुछ देता है अपनी रज़ा और दया भाव से देता है। गुरु रामदास जी का कथन है: 'हर जो किछ करे सो आपे आपे ओह पूछ न किसै करे बीचार॥'[15]

वडी वडिआई जा आपे आप—वह प्रभु बड़ा है, क्योंकि वह स्वयं अपने-आप से है और कोई दूसरा उसके जैसा नहीं है। सूफ़ी फ़कीरों ने अल्लाह को 'क़ायम बिलज़ात' और 'वाहद-हू-लाशरीक' कहकर पुकारा है। भाव वह स्वयं सृजित है और उसका कोई सानी नहीं है। सारंग की वार महला ४ के साथ सम्मिलित एक श्लोक में गुरु नानक देव जी कहते हैं:

होर सरीक होवै कोई तेरा तिस अगै तुध आखां॥
तुध अगै तुधै सालाही मै अंधे नाउ सुजाखा॥
जेता आखण साही सबदी भाखिआ भाए सुभाई॥[16]

आप कहते हैं: हे प्रभु! यदि कोई दूसरा हो तो उसके सामने तेरे गुणों का वर्णन करूँ। यह भी विवशता है कि मैं तुम्हारा गुणगान तुम्हारे ही सामने कर रहा हूँ और कुछ देखने और जानने योग्य नहीं होते हुए भी सब मुझे आँखोंवाला कहते हैं। न शब्दों में तेरा वर्णन कर पाने का सामर्थ्य है और न भावों में। इसलिए मैं केवल यही कह सकता हूँ कि तू बड़े से बड़ा और अकथनीय है तथा तेरी महिमा भी बड़ी से बड़ी और अकथनीय है।

नानक कार न कथनी जाए॥ कीता करणा सरब रजाए॥—उस प्रभु की करनी का वर्णन कर पाना असंभव है। वह जो कुछ करता है, अपनी स्वतंत्र इच्छा से करता है और जो कुछ करता है, ठीक करता है। गुरु नानक देव जी ने ये दोनों भाव इस तरह से भी प्रकट किए हैं:

जो किछ करणा सो कर रहिआ कीते किआ चतुराई॥[17]

आप कहते हैं: 'पूरे का कीआ सभ किछ पूरा घट वध किछ नाही॥'[18] वह पूर्ण पुरुष जो कुछ करता है, पूर्ण ही होता है।

महला २

इह जग सचै की है कोठड़ी सचे का विच वास॥
इकन्हा हुकम समाए लए इकन्हा हुकमे करे विणास॥
इकन्हा भाणै कढ लए इकन्हा माइआ विच निवास॥
एव भि आख न जापई जे किसै आणे रास॥
नानक गुरमुख जाणीऐ जा कउ आप करे परगास॥ ३॥

आख=कहना; **किसै...रास**=किस की मेहनत रंग लायेगी।

सरलार्थ: गुरु अंगद देव जी कहते हैं: यह संसार उस प्रभु के निवास के लिए बनी कोठरी के समान है। वह ख़ुदा इस क़ुदरत में समाया हुआ है। यदि कुछ जीव उससे मिलने का सौभाग्य प्राप्त करते हैं, तो ऐसा केवल उस प्रभु के हुक्म से ही होता है और यदि कुछ जीव अपना सबकुछ नष्ट कर देते हैं, तो यह भी उसी के हुक्म के अनुसार होता है। यह भी उसी की रज़ा या हुक्म है कि कुछ जीव माया के पंजे से निकल जाते हैं और कुछ उसी में फँसे रहते हैं। यह कह पाना भी संभव नहीं कि किसकी मेहनत सफल होगी और किसकी नहीं। जिस भाग्यशाली जीव को वह कर्ता, गुरु के ज़रिये स्वयं ज्ञान का प्रकाश बख़्श दे, उसे ही इस सत्य की सूझ हो सकती है।

❖ इस प्रसंग में गुरु साहिब ने संसार के लिए 'कोठड़ी' शब्द का प्रयोग किया है। कोठरी की महिमा उसमें रहनेवाले व्यक्ति से होती है। रचना की महिमा कण-कण में व्याप्त उसके कर्ता से है। रचनारूपी कोठरी प्रभु के हुक्म का खेल है। यह प्रभु के हुक्म से ही अस्तित्व में आती है और उसके हुक्म द्वारा ही नष्ट हो जाती है। इसमें रह रहे जीव भी पूरी तरह से प्रभु के हुक्म में हैं। वह प्रभु जिन्हें अपनी रज़ा से अपने साथ मिलाना चाहता है, वे इस नश्वर मायामय रचना से मुक्त होकर अविनाशी प्रभु में समा जाते हैं। अन्य सभी उसकी रज़ा के अनुसार रचना का अंग बने रहते हैं तथा आवागमन के चक्कर के साथ बँधे रहते हैं। कुछ लोगों का परिश्रम सफल हो जाता है तथा कुछ का व्यर्थ चला

जाता है। इसका कारण भी प्रभु की रज़ा है। दूसरे शब्दों में मनुष्य के प्रयत्न की सफलता और असफलता का आधार भी प्रभु की रज़ा है। सृष्टि में जो कुछ अस्तित्व में आया है, प्रभु के हुक्म से आया है और इसमें जो कुछ भी हो रहा है, उस कर्ता की रज़ा के अनुसार हो रहा है। गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि प्रभु कृपा से जिन जीवों का सतगुरु से मिलाप हो जाता है, उनके अंदर सत्य का प्रकाश हो जाता है।

गुरु नानक देव जी *जप जी* की दूसरी पउड़ी में फ़रमाते हैं: रचना का प्रत्येक पदार्थ प्रभु के हुक्म से रूप धारण करता है तथा सब जीव उसके हुक्म से रचना का अंग बनते हैं। जो उत्तम हैं, कर्ता के हुक्म से हैं, जो नीच हैं, उसके हुक्म से हैं। सुख-दुःख का प्रसार उसके हुक्म से हो रहा है। जिन्हें कर्ता अपने साथ मिलाने की बड़ाई बख़्शना चाहता है, उन्हें अपने साथ मिला लेता है, अन्य सभी उसके हुक्म से आवागमन के चक्कर से बँधे रहते हैं। जो कुछ है उसके हुक्म में है, कुछ भी उसके हुक्म से बाहर नहीं है। जिसे उसके हुक्म की सूझ हो जाती है, वह अहंकार, आपाभाव या कर्ता भाव के रोग से मुक्त हो जाता है।

पीछे कुछ प्रसंगों में प्रभु के सर्वशक्तिमान्, कर्ता, सर्वज्ञाता, दयालु और बख़्शिंद होने के वर्णन आए हैं। इस प्रसंग में प्रभु की रज़ा यानी इच्छा पर प्रकाश डाल रहे हैं। जिस व्यक्ति के पास शक्ति, ज्ञान, दया और प्रेम का अनंत भंडार है, परंतु वह इन गुणों को प्रयोग करने की इच्छा नहीं रखता, तो ये सारे गुण कार्यशील नहीं हो सकते। प्रभु की इच्छा उसके सब गुणों के कार्यशील होने का साधन है। संत नामदेव जी का कथन है:

> गुर कै सबद एह मन राता दुबिधा सहज समाणी॥
> सभो हुकम हुकम है आपे निरभउ समत बीचारी॥[19]

सतगुरु के उपदेशानुसार मन जब शब्द में लीन हो गया, तो हर प्रकार के संशय और भ्रम दूर हो गए। आत्मा को परमात्मा के साथ मिलाप की वह सहज अवस्था प्राप्त हो गई जो परिवर्तन, विनाश तथा दुःख-सुख से ऊपर है। उस अवस्था में पहुँचकर यह पता चला कि वह निर्भय, निरंकार, इच्छारूप है तथा

जो कुछ हो रहा है, उसके हुक्म यानी इच्छा के अनुसार हो रहा है। गुरु नानक देव जी वाणी के एक अन्य प्रसंग में कहते हैं:

> मन हर कै भाणै आवै जाए॥ सभ मह एको किछ कहण न जाए॥
> सभ हुकमो वरतै हुकम समाए॥ दूख सूख सभ तिस रजाए॥[20]

प्रभु सर्वव्यापक है और जो कुछ हो रहा है, उसके हुक्म यानी उसकी रज़ा के अनुसार हो रहा है। जन्म-मरण, दुःख-सुख सबकुछ कर्ता की रज़ा के अनुसार हो रहा है। गुरु नानक देव जी फ़रमाते हैं:

> जो किछ कीनो सो प्रभू रजाए॥ जो धुर लिखिआ सो मेटणा न जाए॥
> हुकमे बाधा कार कमाए॥ एक सबद राचै सच समाए॥
> चहु दिस हुकम वरतै प्रभ तेरा चहु दिस नाम पतालं॥
> सभ मह सबद वरतै प्रभ साचा करम मिलै बैआलं॥[21]

इस प्रसंग में सत्य, प्रभु, हुक्म, रज़ा, शब्द और नाम समान अर्थों में प्रयोग किए गए हैं। गुरु साहिब समझा रहे हैं कि कर्ता की रज़ा से उत्पन्न हुई सृष्टि में जो कुछ हो रहा है, धुर-दरगाह में कर्ता द्वारा लिखे लेख के अनुसार हो रहा है। प्रभु ने धुर से जो भाग्य में लिख दिया है उसको मिटाया नहीं जा सकता। कर्ता का हुक्म, शब्द या नाम, कर्ता की तरह ही अनादि तथा सर्वव्यापक है। सृष्टि की प्रत्येक वस्तु और इसका प्रत्येक जीव कर्ता के हुक्म की डोर में पिरोया हुआ है। जो भाग्यशाली जीव प्रभु की रज़ा के अनुसार शब्द में अभेद हो जाते हैं, उन्हें प्रभु की रज़ा के अनादि और सर्वव्यापक प्रसार की सूझ हो जाती है।

जैसे लोक वार में योद्धा की अपार शक्ति और उसके हुक्म की महिमा की जाती है, उसी प्रकार इस आध्यात्मिक वार और इसके साथ संकलित श्लोकों में यह भाव स्पष्ट दिखाई देता है कि सृष्टिरूपी रणभूमि भी सर्वशक्तिमान् कर्ता पुरुष की रज़ा से उत्पन्न हुई है और इसमें दृश्यमान युद्ध का पूर्ण प्रसार उस एक कर्ता की रज़ा के अनुसार हो रहा है।

पउड़ी

नानक जीअ उपाए कै लिख नावै धरम बहालिआ॥
ओथै सचे ही सच निबड़ै चुण वख कढे जजमालिआ॥
थाउ न पाइन कूड़िआर मुह काल्है दोजक चालिआ॥
तैरै नाए रते से जिण गए हार गए से ठगण वालिआ॥
लिख नावै धरम बहालिआ॥ २॥

धरम=धर्मराज; **जजमालिआ**=कुष्ठी, पापी; **कूड़िआर**=झूठे; **दोजक**=नरक; **जिण गए**=जीत गए।

सरलार्थ: गुरु नानक देव जी कहते हैं: प्रभु ने जीवों का सृजन करके, उनके कर्मों का लेखा लिखने के लिए धर्मराज को नियुक्त कर दिया है। धर्मराज के दरबार में सच्चा और पूर्ण न्याय किया जाता है तथा कुष्ठी अर्थात् पापियों को चुनकर अलग कर लिया जाता है। माया से प्रेम करनेवाले झूठों का वहाँ ठहरना कठिन हो जाता है, उन्हें मुँह काला करके नरकों में डाला जाता है। हे प्रभु! जो तेरे नाम के रंग में रँगे हुए थे, वे जीवन की बाज़ी जीत गए तथा तेरी दरगाह में स्वीकार हो गए। ठगी तथा हेरा-फेरी करनेवाले जीवन की बाज़ी हार गए और दरगाह में स्वीकार नहीं हुए।

❖ पिछले श्लोक के भाव का विस्तार सहित वर्णन करते हुए गुरु साहिब फ़रमा रहे हैं कि प्रभु द्वारा सृजित सृष्टि, कर्म तथा फल के नियमानुसार चल रही है। धर्मराज प्रत्येक जीव के सब कर्मों का हिसाब रखता है तथा उन्हें उनका फल देता है। संसार में दो प्रकार के लोग हैं, एक प्रभु के नाम के साथ प्रेम करनेवाले सच्चे तथा दूसरे मायामय रचना के साथ प्रेम करनेवाले झूठे। नाम के साथ लिव जोड़नेवाले सच्चे, जीवन की बाज़ी जीतकर कुल मालिक के दरबार में स्वीकार हो जाते हैं, जबकि मन के अनुसार कर्म करनेवाले झूठे, रचना का ही अंग बने रहते हैं तथा नरकों की आग में जलते हैं।

सलोक और पउड़ी ३

सलोक महला १

विसमाद नाद विसमाद वेद॥ विसमाद जीअ विसमाद भेद॥
विसमाद रूप विसमाद रंग॥ विसमाद नागे फिरह जंत॥
विसमाद पउण विसमाद पाणी॥ विसमाद अगनी खेडह विडाणी॥
विसमाद धरती विसमाद खाणी॥ विसमाद साद लगह पराणी॥
विसमाद संजोग विसमाद विजोग॥ विसमाद भुख विसमाद भोग॥
विसमाद सिफत विसमाद सालाह॥ विसमाद उझड़ विसमाद राह॥
विसमाद नेड़ै विसमाद दूर॥ विसमाद देखै हाजरा हजूर॥
वेख विडाण रहिआ विसमाद॥ नानक बुझण पूरै भाग॥१॥

विसमाद=आश्चर्य; **नाद**=शब्द, आवाज़; **रूप**=आकार; **खेडह विडाणी**=आश्चर्यजनक खेल खेलती है; **खाणी**=जीवों की उत्पत्ति के भिन्न-भिन्न रूप; **साद**=स्वाद; **विजोग**=वियोग; **भोग**=भोजन, भोग; **उझड़**=कुमार्ग; **राह**=सही मार्ग; **हाजरा हजूर**=प्रत्यक्ष, सामने।

❖ इस श्लोक में गुरु नानक देव जी प्रभु द्वारा रचित अनंत प्रकार की सृष्टि को देखकर मन में उत्पन्न होनेवाली आश्चर्यजनक प्रसन्नता को प्रकट कर रहे हैं। ***विसमाद नाद विसमाद वेद॥ विसमाद जीअ विसमाद भेद॥***—गुरु साहिब कहते हैं: शब्द की अनंत अपार शक्ति और वेद आदि धर्म ग्रंथों का ज्ञान देखकर आश्चर्य होता है। रचना के अनंत जीव और उनकी अनेक किस्में देखकर मन विस्माद से भर जाता है। चार खानियाँ हैं, चारों खानियों में चौरासी लाख जीव हैं। अनेक वृक्ष हैं, परंतु कोई वृक्ष किसी दूसरे वृक्ष के समान नहीं दिखता। पशुओं और पक्षियों की अनंत किस्में हैं। अनेक मनुष्य हैं, परंतु देखने में कोई मनुष्य किसी दूसरे जैसा नहीं है। औरत-आदमी, अमीर-ग़रीब, बुद्धिमान् और मूर्ख आदि के अनंत भेद हैं।

विसमाद रूप विसमाद रंग॥ विसमाद नागे फिरह जंत॥—अनंत प्रकार के जीवों के अनंत प्रकार के रंग-रूप आश्चर्यचकित करते हैं। प्रभु द्वारा सृजित

सुंदरता आश्चर्यजनक है। अनंत जीव, कीट-पतंगों, पशु-पक्षियों का नग्न घूमते रहना आश्चर्यजनक है।

विसमाद पउण विसमाद पाणी॥ विसमाद अगनी खेडह विडाणी॥—प्रभु द्वारा उत्पन्न किए गए तत्त्वों के चमत्कार देखकर हैरानी होती है। वायु की सर्वव्यापकता, उसका प्रत्येक स्थान पर होना, परंतु कहीं भी दिखाई न देना, उसका आँधी-तूफ़ानों का रूप धारण कर लेना आदि सब आश्चर्यजनक करामातें हैं। वनस्पति में एक पानी ही अनंत रूप धारण करता है। पानी कभी भाप का रूप धारण करता है, कभी धुँध या कोहरे का और कभी बादलों या वर्षा का तथा कभी ओले बन जाता है। पवन और पानी के बिना जीवों का जीवित रह पाना असंभव है। अनेक प्रकार की अग्नि अनेक प्रकार की आश्चर्यजनक करामातें दिखाती है। अग्नि के तेज के बिना जीवन की कल्पना कर पाना असंभव है। धरती की गोद में छिपी अग्नि (बड़वानल) ज्वालामुखी के रूप में फूटती है, तो अग्नि का समुद्र उमड़ पड़ता है। जंगल की अग्नि (दावानल)जो तबाही करती है, वह वर्णन से परे है।

विसमाद धरती विसमाद खाणी॥—पृथ्वी को देखकर बुद्धि चकित रह जाती है। पृथ्वी एक ही समय में अपनी धुरी के इर्द-गिर्द भी घूमती है तथा सूर्य के इर्द-गिर्द भी। इसके बावजूद पृथ्वी स्थिर महसूस होती है तथा बिना किसी दृश्यमान सहारे के अंतरिक्ष में टिकी हुई है। इसकी उपज—फल, फूल, सब्ज़ियों, मेवों, धातुओं, सोने-चाँदी, हीरों आदि को देखकर बुद्धि दंग रह जाती है। जीव धरती के सहारे क़ायम हैं। जीवन में धरती का महत्त्व वर्णनातीत है। धरती की चार खानियाँ—अंडज, जरायुज, स्वेदज, उद्भिज्ज—मन में विस्माद पैदा करती हैं। कुछ जीव झिल्ली में लिपटे उत्पन्न होते हैं, कुछ अंडों में से जन्म लेते हैं, कुछ पसीने या उमस से जन्म लेते हैं और कुछ वनस्पति के रूप में सामने आते हैं। '*विसमाद साद लगह पराणी॥*'—अनेक प्रकार के स्वादों में लिप्त अनंत जीवों को देखकर हैरानी होती है।

विसमाद संजोग विसमाद विजोग॥ विसमाद भुख विसमाद भोग॥—संसार में संयोग-वियोग, भूख और भूख की तृप्ति के साधनों का प्रसार देखकर भी आश्चर्य होता है। पक्षियों का आहार अनाज और फल-फूल है।

कुछ पशुओं का आहार वनस्पति है और कुछ का मांस। संसार में भूख और भूख दूर करने के लिए खाए जानेवाले खाद्य पदार्थों का प्रसार भी आश्चर्यजनक है। पहले शारीरिक भूख की तरफ़ देखें, एक तरफ़ चींटी का भोजन है, दूसरी तरफ़ हाथी का! फिर यह देखकर आश्चर्य होता है कि पेट भर जाता है, परंतु मन तृप्त नहीं होता। इससे भी बड़ा आश्चर्य यह है कि पेट भरने के कुछ ही देर बाद दोबारा भूख लग जाती है। भूख केवल भोजन की नहीं है। अन्य अनेक प्रकार की वस्तुओं और पदार्थों की भूख भी है। मन की अनेक प्रकार की तृष्णा या भूख तथा इनकी तृप्ति के साधनों को देखकर बुद्धि चकित रह जाती है।

विसमाद सिफत विसमाद सालाह॥ विसमाद उझड़ विसमाद राह॥—प्रभु के गुणों को देखकर हैरानी भी होती है और उसकी अनेक प्रकार से हो रही महिमा देखकर आश्चर्य भी होता है। प्रभु की खोज में लगे अनंत लोगों को ग़लत रास्ते पर चलते हुए देखकर भी आश्चर्य होता है और ठीक रास्ते पर चलनेवालों को देखकर आश्चर्य भी होता है। ग़लत रास्ते पर चलनेवालों को लाख समझाओ, उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। सही रास्ते पर चलनेवालों के रास्ते में लाखों रुकावटें और लाखों लोभ क्यों न आएँ, वे कुमार्ग पर नहीं चलते।

विसमाद नेड़ै विसमाद दूर॥ विसमाद देखै हाजरा हजूर॥—अनेक लोगों का प्रभु को नज़दीक समझना और अनेक लोगों का उसे दूर समझना आश्चर्यजनक है। (प्रभु के भक्तों का) उस अलख, अगम्य, निराकार को हाज़रा-हज़ूर, ज़ाहरा-ज़हूर तथा प्रत्यक्ष समझना भी चकित करता है।

वेख विडाण रहिआ विसमाद॥ नानक बुझण पूरै भाग॥—गुरु साहिब कहते हैं कि संसार में हो रहे प्रभु के अनंत प्रकार के चमत्कार देखकर मन विस्मय से भर जाता है। इन आश्चर्यजनक चमत्कारों की समझ, चमत्कार दिखानेवाले प्रभु की दया द्वारा ही संभव है।

गुरु साहिब समझा रहे हैं कि जैसे-जैसे जीव प्रभु की अनेक प्रकार की रचना और इसके प्रसार को गहरी दृष्टि से देखता है, इसके हृदय में रचयिता के प्रति आश्चर्य से भरपूर आनंद उत्पन्न होता है। गुरु नानक देव जी वाणी के एक अन्य प्रसंग में फ़रमाते हैं:

नित नित जीअड़े समालीअन देखैगा देवणहार॥
तेरे दानै कीमत ना पवै तिस दाते कवण सुमार॥[22]

वह प्रभु अनंत प्रकार की सृष्टि का रचयिता भी है, प्रतिपालक तथा रक्षक भी। जब उस दाता द्वारा बख़्शिश की गई अनंत बख़्शिशों का हिसाब लगाना कठिन है तो फिर उस दाता के बारे में क्या हिसाब लगाया जा सकता है! अभिप्राय यह है कि रचना और रचयिता दोनों अद्‌भुत हैं। दोनों का कोई पारावार नहीं है।

महला १

कुदरत दिसै कुदरत सुणीऐ कुदरत भउ सुख सार॥
कुदरत पाताली आकासी कुदरत सरब आकार॥
कुदरत वेद पुराण कतेबा कुदरत सरब वीचार ॥
कुदरत खाणा पीणा पैन्हण कुदरत सरब पिआर॥
कुदरत जाती जिनसी रंगी कुदरत जीअ जहान॥
कुदरत नेकीआ कुदरत बदीआ कुदरत मान अभिमान॥
कुदरत पउण पाणी बैसंतर कुदरत धरती खाक॥
सभ तेरी कुदरत तूं कादिर करता पाकी नाई पाक॥
नानक हुकमै अंदर वेखै वरतै ताको ताक॥ २॥

कुदरत=शक्ति, सामर्थ्य; **भउ**=भय; **कतेबा**=यहूदियों, ईसाइयों और मुसलमानों के चार धर्म ग्रंथ—तुरैत, ज़बूर, बाइबल और क़ुरान को कतेब कहा जाता है; **जिनसी**=किस्में; **बैसंतर**=आग; **नाई**=महिमा; **ताको ताक**=निर्लेप होकर, अलग होकर।

सरलार्थ: गुरु नानक देव जी समझा रहे हैं कि संसार में जो कुछ हो रहा है, परमात्मा की शक्ति द्वारा हो रहा है। आप कहते हैं कि संसार में जो कुछ दिखाई दे रहा है, जो कुछ सुनाई दे रहा है, भय, दु:ख-सुख की सूझ आदि सब प्रभु की क़ुदरत या प्रभु का चमत्कार है। सब पाताल, सब

आकाश यानी जो भी आकार नज़र आ रहे हैं, सब प्रभु की क़ुदरत है, उसका चमत्कार है। हिंदुओं, यहूदियों, ईसाइयों और मुसलमानों आदि के सभी धर्म ग्रंथ और इनमें प्रकट सब विचार प्रभु की क़ुदरत है। संसार में खाना-पीना, पहनना और प्रेम का प्रसार प्रभु की क़ुदरत का चमत्कार है। प्रभु ने अनंत रंग-रूपों और किस्मों के जो अनगिनत जीव पैदा किए हैं, वे भी उसकी क़ुदरत हैं। संसार में अनंत प्रकार की अच्छाइयाँ, अनंत प्रकार की बुराइयाँ और अनेक तरह के मान अहंकार का जो भी प्रसार है, सब प्रभु की लीला है। वायु, पानी, अग्नि, धरती और मिट्टी, ये सभी प्रभु की क़ुदरत हैं। हे कर्ता पुरुष! जो कुछ है, तेरी क़ुदरत है। तू कर्ता है। हे सृजनहार प्रभु! तू निर्मल है, तेरी महिमा भी निर्मल है। यह तेरा आश्चर्यजनक चमत्कार है कि तू सृष्टि में व्याप्त होने के बावजूद इससे निर्लेप होकर इसे अपने हुक्म के अनुसार चलता हुआ देख रहा है।

❖ इस श्लोक में गुरु साहिब यह भाव व्यक्त कर रहे हैं कि रचना में रंगों, रूपों, आकारों और कार्यों की अनेकता है, परंतु इन सबके पीछे एक ही शक्ति कार्यशील है। आप फ़रमाते हैं कि संपूर्ण सृष्टि एक कर्ता की रज़ा का खेल है तथा यह उस कर्ता के हुक्म के अनुसार ही अनेक प्रकार के कार्य कर रही है। गुरु अमरदास जी की वाणी है:

जगजीवन साचा एको दाता॥ गुर सेवा ते सबद पछाता॥
एको अमर एका पतिसाही जुग जुग सिर कार बणाई हे॥[23]

सारे संसार को जीवन बख़्शनेवाला कर्ता एक है और समस्त सृष्टि उस एक शहंशाह के हुक्म में चल रही है। गुरु नानक देव जी का कथन है: 'एको हुकम वरतै सभ लोई॥ एकस ते सभ ओपत होई॥'[24] सृष्टि की अनेकता का कर्ता एक प्रभु है तथा संपूर्ण सृष्टि उस एक कर्ता की रज़ा यानी हुक्म की डोरी में पिरोई हुई है। सृष्टि का कर्ता भी एक है तथा उस द्वारा सृष्टि को चलानेवाला नियम यानी विधान भी एक है।

पउड़ी

आपीन्है भोग भोग कै होए भसमड़ भउर सिधाइआ ॥
वडा होआ दुनीदार गल संगल घत चलाइआ ॥
अगै करणी कीरत वाचीऐ बह लेखा कर समझाइआ ॥
थाउ न होवी पउदीई हुण सुणीऐ किआ रूआइआ ॥
मन अंधै जनम गवाइआ ॥ ३ ॥

भउर=आत्मा; **सिधाइआ**=चला गया; **गल**=गले में; **घत**=डालकर; **वाचीऐ**=देखी जाती है; **थाउ**=ठिकाना; **पउदीई**=मार पड़ती है; **रूआइआ**=रोने का।

सरलार्थ: दूसरी पउड़ी के भाव को यहाँ हार-जीत, पुरस्कार और सज़ा की शैली में प्रकट करते हुए कहते हैं: जो जीव संसार में इंद्रियों के भोगों में लिप्त रहा, अंत समय उसका शरीर मिट्टी की ढेरी हो गया और उसकी आत्मा परलोक चली गई। जो प्राणी दुनियादारी में बड़ा बना हुआ था, मृत्यु के बाद उसकी यह दुर्दशा हुई कि उसके गले में ज़ंजीर डालकर उसे धर्मराज के दरबार में पेश किया गया। उस दरबार में अच्छे और बुरे कर्मों के हिसाब से जीव के बारे में निर्णय किया जाता है। जीव को उसके सारे कर्मों का हिसाब दिखाया और समझाया जाता है। जब वहाँ यमों की मार पड़ती है, तो इसे छिपने का कोई ठिकाना नहीं मिलता। अंधा मनमुख अपना जन्म व्यर्थ गँवा देता है।

❖ गुरु नानक देव जी सावधान करते हैं कि धर्मराज के दरबार में जीव की सांसारिक प्राप्ति और सम्मान नहीं देखा जाता। वहाँ उसके कर्म और भाव देखे जाते हैं तथा उन्हीं के अनुसार फल दिया जाता है। अज्ञानी जीव अपने किए हुए कर्मों का फल भोगते हुए रोता और चिल्लाता है, परंतु इसका कोई लाभ नहीं होता। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

पाप करेदड़ सरपर मुठे ॥ अजराईल फड़े फड़ कुठे ॥
दोजक पाए सिरजणहारै लेखा मंगै बाणीआ ॥[25]

जो पाप करते हैं, उनका विनाश निश्चित है। अज़राईल फ़रिश्ता निर्दयता से उन पर आक्रोश करता है। उन्हें अपने किए हुए कर्मों की सज़ा भुगतने के लिए नरकों में डाल दिया जाता है।

सलोक और पउड़ी ४

सलोक महला १

भै विच पवण वहै सदवाउ ॥ भै विच चलह लख दरीआउ ॥
भै विच अगन कढै वेगार ॥ भै विच धरती दबी भार ॥
भै विच इंद फिरै सिर भार ॥ भै विच राजा धरम दुआर ॥
भै विच सूरज भै विच चंद ॥ कोह करोड़ी चलत न अंत ॥
भै विच सिध बुध सुर नाथ ॥ भै विच आडाणे आकास ॥
भै विच जोध महाबल सूर ॥ भै विच आवह जावह पूर ॥
सगलिआ भउ लिखिआ सिर लेख ॥ नानक निरभउ निरंकार सच एक ॥ १ ॥

सदवाउ=सदैव; **दरीआउ**=दरिया; **वेगार**=वह काम जिसमें अपना कोई लाभ न हो; **इंद**=इंद्र भाव बादल; **सिध**=सिद्ध पुरुष; **बुध**=बुद्धिमान, ज्ञानी; **नाथ**=योगी; **आडाणे आकास**=आकाश फैले हुए हैं; **जोध**=योद्धा; **पूर**=अनगिनत लोग।

❖ ***भै विच पवण वहै सदवाउ ॥ भै विच चलह लख दरीआउ ॥***—प्रभु के भय से वायु सदैव चलती रहती है। वायु की गति धीमी या तेज़ हो सकती है, परंतु वह कभी बंद नहीं होती। वायु सजीव रचना के जीवन का आवश्यक अंग है। लाखों दरिया अपने कर्ता के हुक्म में बिना रुके लगातार बहते रहते हैं।

भै विच अगन कढै वेगार ॥ भै विच धरती दबी भार ॥—'वेगार' का अर्थ है वह कार्य करना जिसमें न अपनी मर्ज़ी हो तथा न ही कोई निजी लाभ। गुरु साहिब कहते हैं कि आग चाहे या न चाहे, इसमें उसका कोई लाभ हो या न हो, वह सदा कर्ता के हुक्म के अनुसार कार्य करती रहती है। 'धरती' वह है जिसने धारण किया हो। जल, पर्वत, वनस्पति, जीव-जंतु सबका आधार धरती है। धरती उस कर्ता के भय के कारण इन सब का भार उठाए हुए है।

भै विच इंद फिरै सिर भार ॥ भै विच राजा धरम दुआर ॥—इंद्र देवताओं का राजा है। इस पंक्ति का एक अर्थ यह भी किया जाता है कि प्रभु के भय के अधीन ही इंद्र अपने सिर पर रखे भार को उठाए हुए है। वह प्रभु के हुक्म के अनुसार उसके द्वारा सौंपे गए कर्तव्य का पालन कर रहा है। इंद्र पानी का देवता भी है। इसलिए इस पंक्ति का दूसरा अर्थ यह भी किया जाता है कि

इंद्र देवता के पानी से भरे बादल कर्ता के भय के अधीन होकर ही सिर के बल आकाश में दौड़ते भागते रहते हैं। इसी प्रकार धर्मराज और उसका दरबार भी सदा मालिक के भय में अपना कार्य करता है।

भै विच सूरज भै विच चंद॥ कोह करोड़ी चलत न अंत॥—मालिक के भय से बँधे चाँद-सूरज करोड़ों मील चलते चले जा रहे हैं। उनका चलना कभी बंद नहीं होता।

भै विच सिध बुध सुर नाथ॥ भै विच आडाणे आकास॥—अनेक सिद्ध पुरुष, देवता, महान् योगी, सभी कुल मालिक के भय में हैं। सारी सृष्टि उसके भय से नियमानुसार चल रही है।

भै विच जोध महाबल सूर॥ भै विच आवह जावह पूर॥—सब योद्धा, महाबली और शूरवीर कुल मालिक के भय में हैं और अनगिनत लोग आवागमन के चक्कर से बँधे हुए हैं।

सगलिआ भउ लिखिआ सिर लेख॥ नानक निरभउ निरंकार सच एक॥—उस कर्ता ने सबके मस्तक पर अपने भय का लेख लिखा हुआ है। शेष सबकुछ कर्ता के भय या हुक्म के अधीन है, परंतु वह अविनाशी कर्ता किसी के भय या हुक्म के अधीन नहीं है।

पिछले कुछ श्लोकों में क़ादिर और उसकी क़ुदरत की महिमा करने के उपरांत इस श्लोक में इस सत्य पर प्रकाश डाल रहे हैं कि प्रभु के हुक्म से अस्तित्व में आया क़ुदरत का सारा कारख़ाना प्रभु के भय अर्थात् हुक्म में चल रहा है। गुरु नानक देव जी कहते हैं कि रचना का सृजन करके रचयिता उसके अधीन नहीं हो जाता। रचना कभी भी अपनी मर्ज़ी से नहीं चल सकती। वह सदा प्रभु के नियमों के अनुसार चलती है। इसमें कर्ता की रज़ा के बिना पत्ता भी नहीं हिल सकता। सबकुछ उस सर्वशक्तिमान् कर्ता की रज़ा के अधीन है, परंतु वह कर्ता किसी के अधीन नहीं है।

गुरु नानक देव जी *जप जी* की 'सो दर' पउड़ी में संपूर्ण सृष्टि को प्रभु के हुक्म में चल रही दर्शाते हुए अपने वर्णन का अंत इस प्रकार करते हैं:

रंगी रंगी भाती कर कर जिनसी माइआ जिन उपाई॥
कर कर वेखै कीता आपणा जिव तिस दी वडिआई॥

जो तिस भावै सोई करसी हुकम न करणा जाई॥
सो पातिसाह साहा पातिसाहिब नानक रहण रजाई॥[26]

आप फ़रमाते हैं कि प्रभु द्वारा सृजित अनेक रंगों और रूपोंवाली अनंत सृष्टि अपने कर्ता के हुक्म के अनुसार चल रही है, परंतु वह प्रभु किसी दूसरे के हुक्म में नहीं है। वह जो कुछ करता है, अपनी रज़ा के अनुसार करता है। जीव को भी चाहिए कि उसकी रज़ा में रहे।

महला १

नानक निरभउ निरंकार होर केते राम रवाल॥
केतीआ कंन्ह कहाणीआ केते बेद बीचार॥
केते नचह मंगते गिड़ मुड़ पूरह ताल॥
बाजारी बाजार मह आए कढह बाजार॥
गावह राजे राणीआ बोलह आल पताल॥
लख टकिआ के मुंदड़े लख टकिआ के हार॥
जित तन पाईअह नानका से तन होवह छार॥
गिआन न गलीई ढूढीऐ कथना करड़ा सार॥
करम मिलै ता पाईऐ होर हिकमत हुकम खुआर॥ २॥

रवाल=धूल मात्र, तुच्छ; **कंन्ह**=कान्हा, श्रीकृष्ण; **गिड़ मुड़**=चक्कर लगाते हुए; **पूरह ताल**=ताल के अनुसार नाचते हैं; **आल पताल**=आकाश-पाताल की बातें, फ़ुज़ूल की बातें; **मुंदड़े**=मुँदराएँ, योगियों के कुंडल; **सार**=लोहे के समान सख़्त; **करम**=दया-मेहर; **हिकमत**=समझदारी; **खुआर**=व्यर्थ।

सरलार्थ: पिछले श्लोक में आए हुक्म के भाव का विस्तार करते हुए गुरु नानक देव जी फ़रमाते हैं: साधारण व्यक्तियों की बात तो एक तरफ़ रही, श्रीराम और श्रीकृष्ण जैसे अनेक अवतार भी, जिनके बारे में पुरातन पुस्तकों में अनेक कथाएँ अंकित हैं, उस मालिक और उसके हुक्म के सामने तुच्छ हैं। अनेक भिखारी और रासधारी, अवतारों की कथाएँ सुनाते

हुए नाचते गाते, चक्कर लेकर बल खाते हुए, अनेक प्रकार के ताल सुनाते हैं जिस का कोई भी लाभ नहीं है।

कई प्रांतों में, शहरों से दूर अनेक स्थानों पर चलते-फिरते व्यापारी बाज़ार सजा लेते हैं। गाँवों के लोग उन बाज़ारों से सामान ख़रीदने के लिए आ जाते हैं। गुरु साहिब कहते हैं कि जिस प्रकार व्यापारी बाज़ार लगाकर सामान बेचते हैं, उसी प्रकार रासधारी, अवतारों की रासों या लीलाओं के बाज़ार लगाते हैं। रासधारी, राजाओं-रानियों का भेष धारण करके अनेक प्रकार का गाना बजाना सुनाते हैं। रासधारी की बातें बिलकुल व्यर्थ और ऊलजलूल होती हैं, परंतु वे उन व्यर्थ की बातों से कुछ समय के लिए हँसी पैदा करके लोगों का मनोरंजन अवश्य कर जाते हैं।

गुरु साहिब कहते हैं: इन रासधारियों के बोल भी झूठे होते हैं, उनके कानों में कुंडल और गले में डाले गए हार—जो लाखों रुपये के भाव बहुमूल्य होने का भ्रम डालते हैं—भी झूठे हैं। यही नहीं, जिन शरीरों ने गहने पहने हुए हैं, उन्होंने भी एक दिन जलकर राख हो जाना है। गुरु साहिब चेतावनी देते हैं: इस प्रकार के बहिर्मुखी कार्यों से उस निराकार प्रभु का ज्ञान और वर्णन प्राप्त करना बहुत कठिन है। प्रभु से मिलाप उसकी दया से होता है। जीव की होशियारी, चालाकी और शक्ति लोक-परलोक में भटकन का कारण बनती है, प्रभु प्राप्ति का साधन बिलकुल नहीं बन सकती।

❖ गुरु साहिब सावधान करते हैं कि होना तो यह चाहिए था कि लोगों का ध्यान एक निर्भय, निरंकार की भक्ति में लगाया जाए, परंतु प्रसार इसके बिलकुल विपरीत है। धन के लालची लोग जनता के धार्मिक भावों का नाजायज़ फ़ायदा उठाते हुए, अवतारों की कथा कहानियाँ और धर्म ग्रंथों के प्रसंग गाकर सुनाते हैं। ऐसे तथाकथित धर्मात्माओं की अवस्था उन व्यापारियों जैसी है जो अपना सामान बेचने के लिए बाज़ार सजाते हैं। गुरु साहिब चेतावनी देते हैं कि इस प्रकार के स्वाँग रचने और हँसी ठिठोली से प्रभु का ज्ञान प्राप्त नहीं होता। उसका ज्ञान उसकी दया से मिलता है। अन्य हर प्रकार की चालाकी, होशियारी केवल भटकन ही है।

पउड़ी

नदर करह जे आपणी ता नदरी सतिगुर पाइआ॥
एह जीउ बहुते जनम भरंमिआ ता सतिगुर सबद सुणाइआ॥
सतिगुर जेवड दाता को नही सभ सुणिअह लोक सबाइआ॥
सतिगुर मिलिऐ सच पाइआ जिन्ही विचहो आप गवाइआ॥
जिन सचो सच बुझाइआ॥४॥

नदर=दया-मेहर; **भरंमिआ**=भटका; **सच**=प्रभु।

सरलार्थ: गुरु नानक देव जी फ़रमाते हैं: हे प्रभु! जब तेरी दया दृष्टि होती है तब सतगुरु की प्राप्ति होती है। जो जीव अज्ञानतावश कई जन्मों से प्रभु से बिछुड़कर भटक रहा था, सतगुरु उसे प्रभु का शब्द सुनाकर उसे शब्द के साथ जोड़ देता है। गुरु साहिब दृढ़तापूर्वक कहते हैं: मेरे प्यारे! मेरी बात ध्यान से सुनो, सतगुरु बड़े से बड़ा दाता है। कोई दूसरा उसकी बराबरी नहीं कर सकता। जो लोग सतगुरु की शरण और नाम के अभ्यास द्वारा अंदर से अहंकार का नाश कर लेते हैं, उन्हें प्रभुरूपी सत्य की पहचान हो जाती है।

❖ इस पउड़ी में गुरु साहिब जीव की मुक्ति का साधन बता रहे हैं। वह साधन है—प्रभु की कृपा से सतगुरु की शरण प्राप्त हो जाना। गुरु साहिब अनेक प्रसंगों में प्रभु को सबसे बड़ा कह आए हैं। इस पउड़ी में आप कहते हैं: ***सतिगुर जेवड दाता को नही सभ सुणिअह लोक सबाइआ॥***—गुरु साहिब छठी पउड़ी में कहते हैं: सतिगुर विच आप रखिओन कर परगट आख सुणाइआ॥ सतगुरु निराकार प्रभु का ही साकार रूप होता है। निराकार प्रभु की दया का दान, साकार सतगुरु द्वारा होता है। गुरु अमरदास जी का कथन है:

करम होवै सतिगुरू मिलाए॥ सेवा सुरत सबद चित लाए॥
हउमै मार सदा सुख पाइआ माइआ मोह चुकावणिआ॥[27]

प्रभु की दया से सतगुरु के साथ मिलाप हो जाता है। जब शिष्य सतगुरु के उपदेशानुसार मन लगाकर शब्द का अभ्यास करता है, तो आपाभाव और माया का मोह दूर हो जाता है तथा प्रभु के साथ मिलाप का स्थायी सुख प्राप्त हो जाता है।

गुरु साहिब के कहने का तात्पर्य है कि प्रभु की दया सतगुरु की प्राप्ति के रूप में और सतगुरु की दया नाम की प्राप्ति के रूप में प्रकट होती है तथा नाम की प्राप्ति प्रभु प्राप्ति का साधन बन जाती है।

गुरु साहिब ने वार के कई प्रसंगों में यह भाव प्रकट किया है कि संसार में जो कुछ होता है, प्रभु के हुक्म से, उसकी रज़ा से होता है। आप इसके साथ ही अनेक प्रसंगों में इस बात पर भी बल देते हैं कि इसे जो कुछ मिलता है, प्रभु की दया से मिलता है। सतगुरु, नाम और प्रभु का मिलाप, प्रभु की दया पर निर्भर है। दया और रज़ा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। प्रभु की रज़ा, उसकी दया में ढलकर जीव के भवसागर से पार उतरने और प्रभु के साथ मिलाप का साधन बन जाती है।

सलोक और पउड़ी ५

सलोक महला १

घड़ीआ सभे गोपीआ पहर कंन्ह गोपाल॥
गहणे पउण पाणी बैसंतर चंद सूरज अवतार॥
सगली धरती माल धन वरतण सरब जंजाल॥
नानक मुसै गिआन विहूणी खाए गइआ जमकाल॥१॥

घड़ीआ=दिन-रात की 64 घड़ियाँ होती हैं; **गोपीआ**=श्रीकृष्ण की सखियाँ; **कंन्ह**=श्रीकृष्ण; **बैसंतर**=आग; **वरतण**=सामग्री; **जंजाल**=धंधा, बंधन; **मुसै**=लुट जाती है; **विहूणी**=ख़ाली।

सरलार्थ: चौथी पउड़ी से पहले आए श्लोक में रासधारियों की बनावटी लीला का वर्णन कर आए हैं। इस श्लोक में संसार में हो रही स्वाभाविक रासलीला की तरफ़ संकेत कर रहे हैं। संसाररूपी रासलीला में घड़ियाँ गोपियों के समान हैं तथा पहर गोपाल कृष्ण के समान हैं। पवन, पानी और अग्नि रासलीला खेलनेवाले अभिनेताओं के गहनों के समान हैं और यह सारी धरती तथा धन दौलत आदि सभी पदार्थ वे साज़ो सामान हैं जिनके कारण जीव इस नाटक के मिथ्या जाल में फँसा हुआ है। प्रभुरूपी सत्य के ज्ञान से विहीन लोग लुट जाते हैं और काल का ग्रास बन जाते हैं।

❖ गुरु नानक देव जी समझा रहे हैं कि जो अज्ञानी जीव संसाररूपी नाटक के रचयिता की तरफ़ ध्यान देने के बजाय इस नाटक को सत्य समझकर इसके मोह में फँस जाता है, वह मन-माया के हाथों लुट जाता है और यमदूतों का ग्रास बन जाता है। जीव का छुटकारा रचयिता के प्रेम में है, रचना के मोह में नहीं।

महला १

वाइन चेले नचन गुर॥ पैर हलाइन फेरन्ह सिर॥
उड उड रावा झाटै पाए॥ वेखै लोक हसै घर जाए॥
रोटीआ कारण पूरह ताल॥ आप पछाड़ह धरती नाल॥
गावन गोपीआ गावन कान्ह॥ गावन सीता राजे राम॥
निरभउ निरंकार सच नाम॥ जा का कीआ सगल जहान॥
सेवक सेवह करम चड़ाउ॥ भिंनी रैण जिन्हा मन चाउ॥
सिखी सिखिआ गुर वीचार॥ नदरी करम लघाए पार॥

वाइन चेले=चेले साज़ बजाते हैं; **रावा**=धूल; **झाटै**=बिखरे हुए बालों में; **रोटीआ कारण**=रोटी कमाने के लिए; **पछाड़ह**=पटकते हैं; **गोपीआ**=गोपियाँ बनकर; **निरंकार** =निराकार प्रभु; **करम**=कर्मफल; **चड़ाउ**=चढ़ावा, अर्पण; **भिंनी**=रसमय; **सिखी...वीचार**=गुरु के उपदेश पर चलने से यह सूझ प्राप्त होती है।

सरलार्थ: सृष्टि में हो रही रासलीला का दृश्य चित्रित करके गुरु नानक देव जी अपने समय के तथाकथित धार्मिकों के अनेक प्रकार के नाच, राग, रँग-तमाशों पर आश्चर्य प्रकट करते हुए कहते हैं: कितनी आश्चर्य की बात है कि शिष्य साज़ बजाते हैं और गुरु सिर हिला-हिलाकर नाचते हुए जब धरती पर पाँव मारते हैं, तब धूल उड़कर उनके बिखरे हुए लंबे बालों में पड़ती है। लोग उनके करतबों पर खिलखिलाकर हँसते हैं और नाटक के समाप्त होने पर अपने-अपने घर वापस चले जाते हैं। रासधारी यह सारा प्रपंच पैसा कमाने के लिए रचते हैं। वे रोज़ी-रोटी के लिए ऐसी ताल छेड़कर ज़ोर-ज़ोर से अपने-आप को धरती पर पटकते हैं,

ताकि लोगों का मन मोह सकें। इस नाटक में रासधारी श्रीकृष्ण और गोपियों, श्रीराम और सीता का स्वाँग बनाकर गीत गाते हैं।

गुरु साहिब बनावटी धार्मिक क्रियाओं का उल्लेख करके प्रभु की सच्ची भक्ति पर प्रकाश डाल रहे हैं। गुरु साहिब फ़रमाते हैं: प्रभु के सच्चे भक्त अन्य किसी की पूजा या भक्ति नहीं करते। वे केवल उस निराकार प्रभु की भक्ति करते हैं जो आवागमन के भय से ऊपर है। वह सच्चा और अविनाशी है, उसका नाम भी उसकी तरह ही सच्चा और अविनाशी है। सारा संसार उस सच्चे प्रभु या उसके नाम द्वारा पैदा हुआ है। जो भक्त प्रभु की भक्ति करते हैं, उसकी रहमत से उनका ध्यान अंतर्मुख हो जाता है। जिनके मन में उसकी भक्ति का प्रेम, चाव और उत्साह होता है, उनकी रात उसकी भक्ति के रंग में रँगी होती है। गुरु के उपदेश पर अमल करना ही सच्ची सेवकाई है। जो सेवक प्रेम और विश्वास से गुरु के उपदेशानुसार नाम का अभ्यास करते हैं, वे प्रभु की दया से भवसागर से पार हो जाते हैं।

❖ ***वाइन चेले नचन गुर॥ पैर हलाइन फेरन्ह सिर॥***—सच्चे गुरु तो जीव को तन-मन स्थिर करके अपनी लिव अंदर शब्द के साथ जोड़ने का उपदेश देते हैं, परंतु रासधारियों ने अपनी जीविका कमाने के लिए इसे व्यापार बना लिया है। शिष्य साज़ बजाते हैं और गुरु धरती पर पाँव मार-मारकर सिर हिलाकर कथा कहानियाँ गाकर सुनाते हैं। गुरु साहिब इस व्यंग्यात्मक झाँकी का दृश्य प्रस्तुत करते हुए कहते हैं:

उड उड रावा झाटै पाए॥ वेखै लोक हसै घर जाए॥
रोटीआ कारण पूरह ताल॥ आप पछाड़ह धरती नाल॥

रासधारियों का रूप धारण करनेवालों ने बाल बिखेरे होते हैं। जब वे संगीत की ताल पर नृत्य करते हुए धरती पर ज़ोर-ज़ोर से पाँव मारते हैं तो मिट्टी उड़-उड़कर उनके बालों में पड़ती है। वे अपने शरीर को धरती पर ज़ोर-ज़ोर से गिराते हैं। लोग उनके करतब देखकर तालियाँ बजाते और हँसते हैं।

इस वर्णन में यह भाव छिपा हुआ है कि ऐसे गुरुओं को न तो लोगों के आत्मिक कल्याण का ख़्याल है और न ही लोगों को अपना भविष्य सुधारने की चिंता है। उनका ध्यान धन कमाने की तरफ़ है और लोगों का ध्यान हँसी-ठिठोली और मनोरंजन तक सीमित है। आप इस विचार का दूसरा पहलू बयान करते हुए कहते हैं:

निरभउ निरंकार सच नाम॥ जा का कीआ सगल जहान॥
सेवक सेवह करम चड़ाउ॥ भिंनी रैण जिन्हा मन चाउ॥
सिखी सिखिआ गुर वीचार॥ नदरी करम लघाए पार॥

प्रभु के सच्चे प्रेमी उस निर्भय, निरंकार के सच्चे नाम के साथ लिव जोड़ते हैं। वे सदा सतगुरु की शिक्षा पर अमल करते हुए नाम का अभ्यास करते हैं। इस प्रकार प्रभु की दया से उनकी सुरत की चढ़ाई शुरू हो जाती है। रास में उलझे जीवों की रात, नाटक द्वारा मनोरंजन में व्यतीत हो जाती है जबकि प्रभु की भक्ति में मग्न और नाम के रंग में रँगे भक्तों की सारी रात आनंदपूर्वक प्रभु की हुज़ूरी में व्यतीत होती है और उन्हें प्रभु की दरगाह में सम्मान मिलता है।

कोलू चरखा चकी चक॥ थल वारोले बहुत अनंत॥
लाटू माधाणीआ अनगाह॥ पंखी भउदीआ लैन न साह॥
सूऐ चाड़ भवाईअह जंत॥ नानक भउदिआ गणत न अंत॥
बंधन बंध भवाए सोए॥ पड़ऐ किरत नचै सभ कोए॥
नच नच हसह चलह से रोए॥ उड न जाही सिध न होहे॥
नचण कुदण मन का चाउ॥ नानक जिन्ह मन भउ तिन्हा मन भाउ॥ २॥

थल=रेगिस्तान; **अनगाह**=अन्न गाह; **सूऐ**=मोटे सूए पर; **भवाईअह**=घुमाए जाते हैं; **जंत**=जीव; **गणत**=गिनती; **भवाए**=घुमाता है; **किरत**=किए हुए कर्म; **चाउ**=शौक़, भउ=डर; **भाउ**=प्रेम।

सरलार्थ: प्रभु की सच्ची भक्ति का उल्लेख करके गुरु नानक देव जी फिर रासधारियों के नाचने कूदने की तरफ़ आ जाते हैं। आप कहते हैं: संसार कोल्हू, चरखे, चक्की और कुम्हार के चाक के समान निरंतर घूम रहा है। यह रेगिस्तान में उठनेवाले असंख्य बवंडरों की तरह तेज़ी से चक्कर

काट रहा है। लट्टू, मथानी, अनाज की गहाई करनेवाले यंत्र मोटे सूए पर चढ़ाकर निरंतर घुमाए जा रहे हैं। पक्षी आकाश में बिना सांस लिए और बिना रुके उड़ते रहते हैं। इन चक्करों की न तो गिनती की जा सकती है और न ही इनका कोई अंत है। वह कर्ता सबको बंधनों में बाँधकर घुमा और नचा रहा है। सब लोग कर्ता द्वारा कर्मों के आधार पर लिखे प्रारब्ध के अनुसार जीवनरूपी नृत्य कर रहे हैं। लोग इस रचना के नाटक में हँस-हँसकर भाग लेते हैं, परंतु अंत समय रोते हुए यहाँ से जाते हैं। वे इस नाटक में चाहे जितना नाच कूद लें और चाहे जितना करतब दिखा लें, वे उड़कर दरगाह में नहीं पहुँच सकते तथा सिद्ध पुरुष नहीं बन सकते। इस तरह का सारा नाचना-कूदना केवल मनोरंजन मात्र है। ये सब मन के खेल हैं।

गुरु साहिब सावधान करते हैं कि जिनके मन में उस कर्ता का भय होता है, उनके अंदर ही उसका भाव या प्रेम जाग्रत होता है और वही रचनारूपी नाटक से मुक्त होकर नाटक के नाटककार से मिलाप कर सकते हैं।

❖ गुरु साहिब श्लोक की पहली छः पंक्तियों में यह विचार प्रकट करते हैं कि यांत्रिक धार्मिक कार्यवाही से कोई पारमार्थिक लाभ नहीं होता। आप सावधान करते हैं:

बंधन बंध भवाए सोए॥ पइऐ किरत नचै सभ कोए॥
नच नच हसह चलह से रोए॥ उड न जाही सिध न होहे॥
नचण कुदण मन का चाउ॥ नानक जिन्ह मन भउ तिन्हा मन भाउ॥

आप कहते हैं कि इन लोगों के हाथ में कुछ भी नहीं है। उनकी हालत कठपुतलियों जैसी है, उनका प्रारब्ध उन्हें जैसा चाहे नाच नचाता है और वे नाच रहे हैं। कुल मालिक उनके द्वारा किए हुए कर्मों के अनुसार जिस प्रकार उन्हें चला रहा है, वे उसी प्रकार चल रहे हैं। इन बेचारों को यह नहीं मालूम कि जो लोग यहाँ व्यर्थ के कार्यों में हँस-खेलकर, नाच-गाकर अपना अमूल्य समय व्यर्थ बरबाद कर लेते हैं, वे रोते हुए यहाँ से जाते हैं। उन्हें यह ज्ञान नहीं

कि मन को ऐसे कार्यों में से रस तो मिलता है, परंतु इनका कोई पारमार्थिक लाभ नहीं होता। गुरु साहिब कहते हैं कि जिनके हृदय में प्रभु का भय होता है उनके अंदर उसका प्रेम भी होता है।

गुरु साहिब सावधान करते हैं कि जिनके मन में प्रभु प्राप्ति की इच्छा है, वे इस प्रकार के व्यर्थ के कार्यों में अपना समय नष्ट नहीं करते। वे उन कर्मों को करने से डरते हैं जो मालिक को अच्छे नहीं लगते। वे उन कार्यों को करने के लिए उत्साहित होते हैं जो मालिक को पसंद हैं।

पउड़ी

नाउ तेरा निरंकार है नाए लइऐ नरक न जाईऐ॥
जीउ पिंड सभ तिस दा दे खाजै आख गवाईऐ॥
जे लोड़ह चंगा आपणा कर पुंनहो नीच सदाईऐ॥
जे जरवाणा परहरै जर वेस करेदी आईऐ॥
को रहै न भरीऐ पाईऐ॥ ५॥

नाइ लइऐ=नाम की आराधना से; **जीउ**=आत्मा; **पिंड**=शरीर; **लोड़ह**=चाहता है; **जरवाणा**=बुढ़ापे का रंग, बुढ़ापे की निशानी; **परहरै**=पीछे हटा दे; **जर**=वृद्धावस्था; **को...पाईऐ**=जब आयुरूपी बर्तन भर जाता है, तो कोई भी यहाँ नहीं रह सकता।

सरलार्थ: हे प्रभु! तेरा नाम निरंकार है। तेरे नाम की आराधना करनेवालों को नरक में नहीं जाना पड़ता। शरीर, आत्मा और शेष सबकुछ उस दाता का ही दिया हुआ है। उस दयालु परमात्मा द्वारा बख़्शी प्रत्येक वस्तु को दूसरों के साथ बाँटना चाहिए। किसी को कुछ देकर उसका अहसान नहीं जताना चाहिए। जताने से दिए हुए की शोभा समाप्त हो जाती है और देने का फल समाप्त हो जाता है। पुण्य कर्मों का मान नहीं करना चाहिए। पुण्य करते हुए भी मन में नम्रता धारण करनी चाहिए। इसी में हमारी वास्तविक भलाई है। गुरु साहिब कहते हैं: यदि कोई बलपूर्वक बुढ़ापे को पीछे करने का प्रयत्न करे तो भी वृद्धावस्था किसी न किसी रूप में अवश्य तुम्हें घेर लेगी। जब आयुरूपी बर्तन भर जाता है तो कोई भी यहाँ नहीं रह सकता।

❖ इस पउड़ी में आप मन में प्रभु का प्रेम उत्पन्न करने के साधन का उल्लेख करते हुए कहते हैं: ***'नाउ तेरा निरंकार है नाए लइऐ नरक न जाईऐ॥'***—वाणी के अनेक प्रसंगों में प्रभु को मुक्तिदाता कहा गया है। इस प्रसंग में नाम को कर्म और फल के बंधन तोड़कर नरकों के दु:ख से मुक्त करनेवाली शक्ति कह रहे हैं। गुरु नानक देव जी ने वार की पहली पउड़ी में फ़रमाया है कि अपना और अपने नाम का कर्ता स्वयं प्रभु है। आपने प्रभु और नाम को एक कहा है और नाम द्वारा सृजित सृष्टि को द्वैत कहा है। नाम सर्वव्यापक है और यही सबका कर्ता है। नाम प्रभु का रूप है इसलिए नाम को प्रभु की तरह सर्वव्यापक और कर्ता कहा गया है। नाम से लिव जोड़ने और परमात्मा से लिव जोड़ने में कोई अंतर नहीं।

गुरु साहिब पउड़ी की अगली चार पंक्तियों में सावधान करते हैं कि नाम का अभ्यास करने के साथ-साथ मन में विनम्रता धारण करनी चाहिए। जो कुछ है कुल मालिक का समझकर दूसरों के साथ बाँटना चाहिए, परंतु स्वयं को दाता नहीं समझना चाहिए और नेक कर्मों का गर्व नहीं करना चाहिए। सदैव विनम्र रहना चाहिए। गुरु नानक देव जी वाणी के एक अन्य प्रसंग में फ़रमाते हैं:

तू एवड दाता देवणहार॥ तोट नाही तुध भगत भंडार॥
कीआ गरब न आवै रास॥[28]

जो कुछ है, उस एक का दिया हुआ है। गुणों और भक्तिभाव का दाता भी वह एक दयालु है। किसी बात का अहंकार करना उचित नहीं। इससे बहुत हानि होती है। गुरु अमरदास जी की वाणी है:

हर जीउ अहंकार न भावई वेद कूक सुणावह॥
अहंकार मुए से विगती गए मर जनमह फिर आवह॥[29]

वेद आदि धर्म ग्रंथ भी पुकारकर कहते हैं कि प्रभु को अहंकार पसंद नहीं है। अहंकारी का उद्धार कभी नहीं होता, वह सदैव आवागमन के चक्कर में फँसा रहता है।

सलोक और पउड़ी ६

सलोक महला १

मुसलमाना सिफत सरीअत पड़ पड़ करह बीचार ॥
बंदे से जि पवह विच बंदी वेखण कउ दीदार॥
हिंदू सालाही सालाहन दरसन रूप अपार ॥
तीरथ नावह अरचा पूजा अगर वास बहकार॥
जोगी सुंन धिआवन्ह जेते अलख नाम करतार॥
सूखम मूरत नाम निरंजन काइआ का आकार॥
सतीआ मन संतोख उपजै देणै कै वीचार॥
दे दे मंगह सहसा गूणा सोभ करे संसार॥
चोरा जारा तै कूड़िआरा खाराबा वेकार॥
इक होदा खाए चलह ऐथाऊ तिना भि काई कार॥
जल थल जीआ पुरीआ लोआ आकारा आकार॥
ओए जि आखह सो तूंहै जाणह तिना भि तेरी सार॥
नानक भगता भुख सालाहण सच नाम आधार॥
सदा अनंद रहह दिन राती गुणवंतिआ पा छार ॥१॥

सरीअत=इसलामी शरीअत या कर्मकांड; **बंदी**=बंदिश, क़ैद; **सालाहन**=सराहने योग्य; **अरचा**=अर्चना करना; **अगर**=एक सुगंधित वृक्ष; **बहकार**=महक; **सुंन**=सुन्न मंडल, सुन्न अवस्था; **सतीआ**=दानी; **जारा**=व्यभिचारी; **वेकार**=विषय-विकार भोगनेवाले; **इक**=कई; **ऐथाऊ**=यहाँ, संसार में से; **काई**=क्या; **लोआ**=लोक, देश; **आकारा**=अनेक रूपोंवाले जीव; **सालाहण**=प्रशंसा करना; **पा छार**=पाँवों की धूलि।

सरलार्थ: गुरु नानक देव जी ने पिछले श्लोकों में बहिर्मुखी आडंबरों को व्यर्थ बताया है। अब हिंदुओं, मुसलमानों, योगियों आदि के बहिर्मुखी कर्मकांड और भक्ति के अन्य साधनों की वास्तविकता का वर्णन कर रहे हैं। आप कहते हैं: मुसलमान शरीअत का गुणगान करते हैं। वे शरअ (कर्मकांड) और फ़िक़ाह (इसलामी धर्म ग्रंथ) की किताबें पढ़-पढ़कर सही-ग़लत का निर्णय लेते हैं। वे केवल उसे ख़ुदा का बंदा मानते हैं जो

उसके दीदार के लिए शरीअत की पाबंदी स्वीकार करता है। हिंदू लोग उस प्रभु की प्रशंसा करते हैं जो प्रशंसा के योग्य है। वे एक तरफ़ धर्म ग्रंथों के आधार पर यह कहते हैं कि प्रभु का स्वरूप और दर्शन अगम, अपार है। दूसरी तरफ़ वे उसकी भक्ति के लिए तीर्थों पर स्नान करते हैं और मूर्तियों की पूजा आराधना करते हैं। वे मूर्तियों के आगे धूप और अगरबत्तियाँ जलाते हैं।

योगी प्रभु को अलख कहते हैं। वे ध्यान को सुन्न मंडल में स्थिर करने का प्रयत्न करते हैं। ध्यान सिर्फ़ आकार वाली वस्तु का ही किया जा सकता है, निराकार निरंजन का नहीं।

गुरु साहिब कहते हैं: दानियों को दान देने में प्रसन्नता होती है। वे चाहते हैं कि दान का हज़ार गुणा फल मिले और सारा संसार उनकी प्रशंसा करे।

गुरु साहिब धार्मिक कार्य व्यवहार या क्रियाओं में लगे लोगों का चित्र प्रस्तुत करके अधर्मियों की अवस्था का वर्णन करते हैं: चोरों, व्यभिचारियों, झूठों, मलीनों और विकारियों की क्या अवस्था है? वे शुभ कर्मों की जो पूँजी साथ लाए थे उसे भी व्यर्थ नष्ट कर देते हैं और मनुष्य जन्म के अमूल्य अवसर को व्यर्थ गँवा देते हैं। गुरु साहिब प्रश्न करते हैं, उनकी करनी के बारे में क्या कहा जाए? वे कौन-सी कमाई साथ लेकर जाएँगे?

गुरु साहिब कहते हैं: हे प्रभु! जल में, थल में, पुरियों और लोकों में भिन्न-भिन्न प्रकार के रूप और आकार वाले जीव भी तेरे बारे में जो भी कहते हैं, तू वह सबकुछ जानता है। तू उनकी भी सँभाल करता है।

इस सारे विवरण के बाद गुरु साहिब उस सच्चे साधन की तरफ़ संकेत करते हैं जिसके द्वारा प्रभु के साथ मिलाप होता है। आप कहते हैं: प्रभु के सच्चे भक्तों के मन में सदा यही तड़प लगी रहती है कि वे सदैव उसकी महिमा के गुणगान में लगे रहें। उन्हें अपने अंदर प्रभु के सच्चे नाम का आधार प्राप्त होता है। ऐसे भक्त सदा सहज आनंद में मग्न रहते हैं। उनके अंदर प्रभु का प्रेम इस तरह से भरा होता है तथा वे इस सीमा तक

नम्रता के पुँज होते हैं कि वे अपने-आपको प्रभु के नाम के रंग में रँगे हुए सच्चे गुणीजनों की चरण धूलि समझते हैं।

❖ ***मुसलमाना सिफत सरीअत पड़ पड़ करह बीचार ॥***
बंदे से जि पवह विच बंदी वेखण कउ दीदार॥

मुल्ला और काज़ी धार्मिक पुस्तकों के आधार पर बार-बार यह सिद्ध करने का यत्न करते हैं कि इसलामी शरीअत ही धर्म का आदि, मध्य और अंत है। गुरु साहिब समझाते हैं कि कुल मालिक का सच्चा सेवक वह है जो उसके दीदार के लिए तन-मन से उसकी भक्ति में लग जाता है। वह प्रभु की रज़ा में राज़ी रहता हुआ मनमर्ज़ी के बहिर्मुखी साधन छोड़कर उसकी अंतर्मुख पूजा-आराधना में जुड़ जाता है, ताकि उसे प्रभु के मिलाप का सौभाग्य प्राप्त हो।

गुरु साहिब हिंदू धर्म की बहिर्मुखी पूजा की ओर संकेत करते हुए कहते हैं:

हिंदू सालाही सालाहन दरसन रूप अपार ॥
तीरथ नावह अरचा पूजा अगर वास बहकार॥

हिंदू धर्म ग्रंथों में निराकार ब्रह्म की स्तुति की गई है, परंतु इस धर्म के पुरोहित-पुजारियों का मुख्य ध्यान मूर्ति पूजा पर है। वे मूर्तियों के आगे धूप और अगरबत्तियाँ जलाते हैं और तीर्थ स्नान करने को बहुत बड़ा पुण्य मानते हैं। गुरु साहिब समझा रहे हैं कि हिंदुओं के धर्म ग्रंथ कुछ और ही कहते हैं, परंतु लोग मनमाने साधनों में लगे हुए हैं। धर्म ग्रंथों के उपदेशानुसार जीवन को ढालना कड़े अनुशासन की माँग करता है। लोग आसान से आसान तरीक़ा ढूँढ़ते हैं। इसलिए वे बहिर्मुखी पूजा और शरीर की सफ़ाई को ही पापकर्मों के नाश और प्रभु की प्राप्ति का साधन समझने की अज्ञानता का शिकार हो जाते हैं।

जोगी सुंन धिआवन्ह जेते अलख नाम करतार॥
सूखम मूरत नाम निरंजन काइआ का आकार॥

इन पंक्तियों की एक व्याख्या यह की जाती है कि जिसे योगी सुन्न और अलख निरंजन कहते हैं, मन में उसका ध्यान करने का प्रयत्न करते हैं। इस संदर्भ में

यह बात विचार करने योग्य है कि ध्यान केवल ऐसी चीज़ का ही किया जा सकता है जिसका भौतिक आकार हो।*

गुरु साहिब समझाते हैं कि एक तरफ़ तो परमात्मा और उसके नाम को मायारहित, निराकार, अलख-अगम कहना और दूसरी तरफ़ सुन्न में उसके ध्यान करने का यत्न करना परस्पर विरोधी है। ध्यान केवल आकार वाली वस्तु का ही किया जा सकता है, निराकार का नहीं।

प्रभु सूक्ष्म और परम चेतन है। वह माया से रहित है। फिर उस निराकार का ध्यान किस प्रकार किया जा सकता है?

सतीआ मन संतोख उपजै देणै कै वीचार॥
दे दे मंगह सहसा गूणा सोभ करे संसार॥

दानी लोग दान देते हैं परंतु उनके मन में संतोष का गुण पैदा नहीं होता। वे प्रभु की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए दान नहीं देते, बल्कि अपने मन को प्रसन्न करने के लिए ऐसा करते हैं। वे नि:स्वार्थ भावना से दान नहीं देते। वे उस दान का हज़ारों गुणा फल माँगते हैं। बात यहीं पर समाप्त नहीं होती, वे यह भी चाहते हैं कि लोग उन्हें बड़ा दानी कहकर उनकी बड़ाई करें, उनकी प्रशंसा के गीत गाएँ। ऐसा दान न केवल दान के वास्तविक भाव के विरुद्ध है, बल्कि इससे अहंकार भी पैदा होता है। यह दान, दान न होकर व्यापार बन जाता है। इस प्रकार के दान से मन और संसार को तो प्रसन्न किया जा सकता है, परंतु प्रभु को प्रसन्न नहीं किया जा सकता।

नानक भगता भुख सालाहण सच नाम आधार॥
सदा अनंद रहह दिन राती गुणवंतिआ पा छार ॥

गुरु साहिब सच्चे भक्तों की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि प्रभु के सच्चे भक्त हिंदू हों या मुसलमान, योगी हों या किसी अन्य संप्रदाय से संबंधित हों, उनकी पहली विशेषता यह है कि उनके मन में सदैव उसकी महिमा गाने की, बंदगी

* विस्तार के लिए देखें संथ्या *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब पोथी 6*, पृ. 2863-64

और भक्ति की भूख रहती है। उनकी दूसरी विशेषता यह है कि वे अन्य सभी साधनों का त्यागकर केवल नाम का सहारा लेते हैं। वे न किसी शरीअत की वकालत करते हैं, न विरोध। वे केवल एक निराकार की अंतर्मुख पूजा भक्ति में विश्वास रखते हैं। उनकी तीसरी विशेषता यह है कि वे जीवन के हर प्रकार के उतार-चढ़ाव से ऊपर उठ चुके होते हैं। उन्हें वह सहज अवस्था प्राप्त हो जाती है जिसमें वे सदा आनंद मग्न रहते हैं। उनकी चौथी विशेषता यह है कि वे अपने-आपको प्रभु भक्तों की चरण धूलि समझते हैं। अभिप्राय यह है कि सच्चे भक्त नम्रता की मूरत होते हैं। वे अपने ज्ञान और गुणों का दिखावा या अहंकार नहीं करते। वे प्रभु के भक्तों की शरण और संगति पसंद करते हैं और हर तरह से सक्षम होने के बावजूद तुच्छ बनकर रहते हैं।

गुरु साहिब ने अनेक लोगों द्वारा अनेक ढंगों से प्रभु की मनमाने ढंग की भक्ति और अन्य अनेक तरह की रहनी का उल्लेख करके अंत में यह निष्कर्ष निकाला है कि नाम की आराधना ही प्रभु की सच्ची भक्ति है और यही सहज आनंद की प्राप्ति का वास्तविक साधन है। गुरु अमरदास जी का कथन है:

बिन नावै होर पूज न होवी भरम भुली लोकाई॥[30]

गुरु अर्जुन देव जी का कथन है:

पुंन दान जप तप जेते सभ ऊपर नाम॥
हर हर रसना जो जपै तिस पूरन काम॥[31]

महला १

मिटी मुसलमान की पेड़ै पई कुम्हिआर॥
घड़ भांडे इटा कीआ जलदी करे पुकार॥
जल जल रोवै बपुड़ी झड़ झड़ पवह अंगिआर॥
नानक जिन करतै कारण कीआ सो जाणै करतार॥ २॥

मिटी...की=मुसलमान की क़ब्र की मिट्टी; **पेड़ै पई**=पास पहुँच गई; **घड़ भांडे**= बर्तन बना लिए; **इटा कीआ**=ईंटें बना लीं; **जलदी**=जलती हुई; **करतै**=कर्ता, रचयिता ने।

सरलार्थ: गुरु नानक देव जी कहते हैं: मालिक की रज़ा देखो कि मुसलमान (की क़ब्र) की मिट्टी कुम्हार के पास पहुँच गई। कुम्हार ने उस मिट्टी से बर्तन बना लिए और ईंटें बना लीं। जब उन बर्तनों और ईंटों को आग में पकाया गया तो वह बेचारी मिट्टी जलती हुई रोती है। उसमें से अंगारे निकलते हैं। गुरु साहिब कहते हैं: जिस कर्ता ने इस सृष्टि का सृजन किया है केवल वही इसके रहस्य को जानता है।

❖ मुसलमान मुर्दे को जलाने के विरुद्ध हैं। गुरु साहिब समझाना चाहते हैं कि जब आत्मा शरीर को त्यागकर एक तरफ़ हो जाती है, तो मृतक शरीर को जलाने या मिट्टी में दबाने से कोई फ़र्क नहीं पड़ता। फ़र्क इस बात से पड़ता है कि सारी ज़िंदगी शरीर को किस आदर्श की पूर्ति के लिए प्रयोग किया है।

पउड़ी

बिन सतिगुर किनै न पाइओ बिन सतिगुर किनै न पाइआ ॥
सतिगुर विच आप रखिओन कर परगट आख सुणाइआ ॥
सतिगुर मिलिऐ सदा मुकत है जिन विचहो मोह चुकाइआ ॥
उतम एह बीचार है जिन सचे सिउ चित लाइआ ॥
जगजीवन दाता पाइआ ॥ ६ ॥

बीचार=विचार।

सरलार्थ: गुरु नानक देव जी कहते हैं: सतगुरु के बिना न पहले किसी ने प्रभु को प्राप्त किया है और न ही कोई कर सकता है। मैं साफ़ कहता हूँ कि प्रभु ने सतगुरु में अपने-आपको प्रकट किया है। जो लोग सतगुरु से मिलकर अपने अंदर से मोह का नाश कर लेते हैं, उन्हें मुक्ति प्राप्त हो जाती है। सबसे उत्तम विचार या उपदेश यह है कि जो सतगुरु से मिलकर सच्चे प्रभु के साथ लिव जोड़ लेता है, उसका जगत् के सृजनहार प्रभु के साथ मिलाप हो जाता है।

❖ ***बिन सतिगुर किनै न पाइओ बिन सतिगुर किनै न पाइआ ॥***
सतिगुर विच आप रखिओन कर परगट आख सुणाइआ ॥

पिछली पउड़ी में समझाया था कि आवागमन से मुक्ति का साधन सतगुरु की शरण है। इस पउड़ी में उसी भाव को दृढ़ करते हुए कहते हैं कि पूरे गुरु के बिना मुक्ति प्राप्ति असंभव है। आप संकेत करते हैं कि सतगुरु निराकार प्रभु का ही साकार रूप होता है। सतगुरु के रूप में प्रकट प्रभु स्वयं जीव को अपने साथ मिलाने का कार्य करता है। सतगुरु की लिव अकाल पुरुष से जुड़ी होती है। उसके अंदर अकाल पुरुष की शक्ति का प्रवाह जारी रहता है। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

1. हर का सेवक सो हर जेहा॥ भेद न जाणहो माणस देहा॥
   जिउ जल तरंग उठह बहु भाती फिर सललै सलल समाइदा॥[32]

2. जिन्हा न विसरै नाम से किनेहिआ॥
   भेद न जाणहो मूल सांई जेहिआ॥[33]

आप समझाते हैं कि समुद्र से उठी लहर समुद्र का रूप होती है। उसी तरह जो भक्त प्रभु के साथ लिव जोड़कर अपनी आत्मा प्रभु में लीन कर देते हैं, वे भी प्रभु का रूप हो जाते हैं। वे अपने शरीर के कारण प्रभु से भिन्न प्रतीत होते हैं, परंतु अंतर में उनकी आत्मा प्रभु से अभेद होती है। गुरु नानक साहिब की वाणी है:

सभ मह जोत जोत है सोए॥
तिस दै चानण सभ मह चानण होए॥
गुर साखी जोत परगट होए॥[34]

प्रभु की ज्योति हरेक के अंदर है, परंतु वह सतगुरु के उपदेश पर अमल करने से प्रकट होती है।

सतिगुर मिलिऐ सदा मुकत है जिन विचहो मोह चुकाइआ ॥
उतम एह बीचार है जिन सचे सिउ चित लाइआ ॥

सतगुरु जीव को रचना के मोह से मुक्त करके उसके अंदर प्रभु का प्रेम पैदा करते हैं। सतगुरु की सहायता से ख़ुद ही ध्यान प्रभु के साथ जुड़ जाता है और जीव का प्रभु के साथ मिलाप हो जाता है।

सलोक और पउड़ी ७

सलोक महला १

हउ विच आइआ हउ विच गइआ॥ हउ विच जंमिआ हउ विच मुआ॥
हउ विच दिता हउ विच लइआ॥ हउ विच खटिआ हउ विच गइआ॥
हउ विच सचिआर कूड़िआर॥ हउ विच पाप पुंन वीचार॥
हउ विच नरक सुरग अवतार॥ हउ विच हसै हउ विच रोवै॥
हउ विच भरीऐ हउ विच धोवै॥ हउ विच जाती जिनसी खोवै॥
हउ विच मूरख हउ विच सिआणा॥ मोख मुकत की सार न जाणा॥
हउ विच माइआ हउ विच छाइआ॥ हउमै कर कर जंत उपाइआ॥
हउमै बूझै ता दर सूझै॥ गिआन विहूणा कथ कथ लूझै॥
नानक हुकमी लिखीऐ लेख॥ जेहा वेखह तेहा वेख॥१॥

हउ=मैं-मेरी का भाव; **खटिआ**=लाभ कमाया; **अवतार**=निवास; **भरीऐ**=मैल से भरता है; **धोवै**=पापों की मैल साफ़ करता है; **जाती**=जाति; **जिनसी**=किस्में; **मोख**=मोक्ष, मुक्ति; **छाइआ**=अंधकार, अविद्या; **जंत**=जंतु के रूप में; **बूझै**=समझे; **दर सूझै**=प्रभु के दरबार की सूझ हो जाती है; **विहूणा**=ख़ाली; **लूझै**=झगड़ता है।

सरलार्थ: इस श्लोक में गुरु नानक देव जी प्रभु द्वारा संसार में फैलाए गए हौंमैं के प्रसार का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करते हुए कहते हैं: जीव हौंमैं या आपाभाव लेकर इस संसार में आया और यही भाव लेकर वापस चला गया। हौंमैं के कारण ही यह फिर से पैदा हो गया और उसी भाव में मर गया। यदि इसने किसी को कुछ दिया तो भी हौंमैं के भाव के अधीन और यदि कुछ लिया तो भी हौमैं के प्रभाव में। इसे जो भी लाभ या हानि हुई, हौंमैं के प्रभाव से हुई। यह सच्चा बनने का प्रयत्न करता हुआ भी हौंमैं के अधीन है और यदि कूड़ या मिथ्या में फँसा हुआ है, तो भी हौंमैं के अधीन है।

यदि जीव पुण्य और पाप के बारे में विचार करता है, तो उसके पीछे भी हौंमैं का भाव छिपा हुआ है। हौंमैं के प्रभाव में किए पुण्य कर्मों से उसे स्वर्गों में निवास मिलता है और हौंमैं के अधीन किए पाप कर्म ही उसे नरकों का अधिकारी बना देते हैं। वह जब हँसता है, तो भी हौंमैं में होता है और जब रोता है तो भी हौंमैं में होता है। वह हौंमैं के कारण ही पापों की मैल से भरता है और जब पापों की मैल को साफ़ करने का यत्न करता है तो भी हौंमैं के अधीन होता है। जब वह जाति-पाँति के अनेक प्रकार के भेदभाव में होता है, तब भी हौंमैं से प्रेरित होता है और जब जाति-पाँति के भेदभाव को दूर करने का यत्न करता है, तब भी हौंमैं के अधीन होता है। मूर्ख और विद्वान दोनों हौंमैं के अधीन कार्य करते हैं और इस कारण किसी को भी आवागमन के चक्कर से मुक्त होने की युक्ति की प्राप्ति नहीं होती। सत्य को झूठ और झूठ को सत्य होने का भ्रम पैदा करने का माया का जो प्रभाव है, सब हौंमैं के कारण है। हौंमैं के रोग के कारण ही जीवों को बार-बार जन्म लेना पड़ता है। हर जन्म में जीव हौंमैं के अधीन ऐसे कर्म करता है जिनकी वजह से फिर जन्म लेना पड़ता है। यदि जीव को हौंमैं की सूझ हो जाए, तो इसे प्रभु के दरबार की भी सूझ हो जाए। जब तक जीव सच्चे ज्ञान से वंचित है, यह अनेक प्रकार की बातें करता रहता है और लोगों के साथ झगड़ता रहता है। जीव के मस्तक पर प्रभु के हुक्म से लेख लिखा जाता है। इस लेख के अनुसार जीव जिस दृष्टि से इस प्रसार को देखता है, उसे यह प्रसार उसी प्रकार दिखाई देता है।

❖ गुरु साहिब समझा रहे हैं कि प्रभु ने संसार की रचना ही इस प्रकार की है कि आरंभ से अंत तक जीव के प्रत्येक कर्म का संचालक भाव हौंमैं है। दूसरे शब्दों में जीव प्रत्येक कर्म कर्ता के भाव या मैं-मेरी के भाव के अधीन होकर करता है। हौंमैं का प्रसार अनादि और सर्वव्यापक है।

हौमैं के इस भयंकर जाल को देखकर जीव सोचता है कि इससे छुटकारे का कोई उपाय है या नहीं? इस प्रश्न का उत्तर गुरु अंगद देव जी अगले श्लोक में देते हैं।

महला २

हउमै एहा जात है हउमै करम कमाहे ॥
हउमै एई बंधना फिर फिर जोनी पाहे ॥
हउमै किथहो ऊपजै कित संजम इह जाए ॥
हउमै एहो हुकम है पइऐ किरत फिराहे ॥
हउमै दीरघ रोग है दारू भी इस माहे ॥
किरपा करे जे आपणी ता गुर का सबद कमाहे ॥
नानक कहै सुणहो जनहो इत संजम दुख जाहे ॥ २ ॥

संजम=साधन, युक्ति; **दारू**=इलाज।

सरलार्थ: गुरु अंगद देव जी कहते हैं कि हौंमैं की मूल पहचान ही यह है कि जीव इस संसार में जो भी कर्म करता है, हौंमैं या आपाभाव के अधीन करता है। जब मनुष्य हौंमैं या आपाभाव के अधीन कर्म करता है, तो वह उन कर्मों का फल भोगने के लिए आवागमन के चक्कर से बँध जाता है और उसे अनेक योनियों में से गुज़रना पड़ता है।

हौंमैं कैसे पैदा होती है और यह किस साधन या विधि द्वारा दूर हो सकती है? हौंमैं कर्ता के हुक्म से पैदा हुई है और हौंमैं के अधीन किए कर्मों के कारण जीव जन्म-मरण के चक्कर में भटकता रहता है। हौंमैं चिरंकाल से चला आ रहा दीर्घ रोग है, इस रोग को दूर करने की दवा भी अंदर है। यदि मालिक की दया हो जाए तो जीव गुरु के उपदेश पर चलकर, शब्द या नाम के अभ्यास में लग जाता है। गुरु साहिब कहते हैं: मेरी बात ध्यान से सुनो। यह विधि अपनाने से दुःख दूर हो जाते हैं।

❖ प्रभु ने जब संसार की रचना की और जीव को अपने से अलग करके रचना का अंग बनाया है, तभी से जीव अपने-आपको प्रभु से अलग समझने के रोग का शिकार है। प्रभु दयालु है। यदि उसने अपने हुक्म से जीव को अपने से अलग करके उसे हौंमैं का रोग दिया है, तो उस रोग की दवा भी दी है। हौंमैं 'हौं' और 'मैं' के जोड़ से बना शब्द है जिसका अर्थ है 'मैं-मैं, मैं-मेरी।' इसका वास्तविक भाव कर्ता भाव है। गुरु नानक साहिब की वाणी है,

'हउमै बिख पाए जगत उपाइआ सबद वसै बिख जाए॥'[35] संसार का सृजन करते समय इसमें हौंमैं का विष (ज़हर) डाला गया है। गुरु अमरदास जी की वाणी है, 'दूजै भाए न सेविआ जाए॥ हउमै माइआ महा बिख खाए॥'[36] आप 'हउमै', 'माइआ' और 'दूजै भाए' तीनों को विष कह रहे हैं। 'दूजै भाए' का अर्थ द्वैत का भाव भी है और प्रभु के बिना किसी दूसरी वस्तु का प्रेम भी है। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं: 'अंतर अलख न जाई लखिआ विच पड़दा हउमै पाई॥'[37] आत्मा और परमात्मा के मध्य हौंमैं का परदा है।

1. वास्तविक कर्ता एक प्रभु है। अपने-आपको किसी कार्य का कर्ता समझना, हौंमैं या अज्ञानता है।
2. उस प्रभु के बिना किसी अन्य वस्तु को अपना बनाने का प्रयत्न करना अहंकार है।
3. 'मैं' का भाव, 'आपाभाव' या अपने-आपको प्रभु से अलग समझना और अपना अलग अस्तित्व क़ायम करने का प्रयत्न करना, हौंमैं है।
4. मनुष्य जन्म से लाभ उठाकर प्रभु से मिलाप करने का यत्न करने के स्थान पर मनमाने कार्यों में लगे रहना, हौंमैं है।
5. संसार प्रभु द्वारा बनाए कर्म फल के नियमानुसार चल रहा है। अपने किए हुए कर्मों के फल से बचने की आशा रखना, हौंमैं है।
6. प्रभु द्वारा अपने साथ मिलाप के लिए सृजित विधि या मुक्ति के बजाय मन पसंद युक्तियों द्वारा प्रभु के साथ मिलाप करने का यत्न करना, हौंमैं है। गुरु अमरदास जी की वाणी है:

हउमै विच भगति न होवई हुकम न बुझिआ जाए॥
हउमै विच जीउ बंध है नाम न वसै मन आए॥[38]

हौंमैं का कारण प्रभु का वियोग है और इसका निवारण प्रभु का मिलाप है, जो शब्द यानी नाम के साथ लिव लगाने से होता है। गुरु नानक देव जी का कथन है:

नानक हउमै रोग बुरे॥
जह देखां तह एका बेदन आपे बखसै सबद धुरे॥[39]

हौंमैं सर्वव्यापक और अनादि रोग है। जिस पर मालिक की दया हो जाती है, वह शब्द के साथ जुड़कर इस रोग से मुक्त हो जाता है।

पउड़ी

सेव कीती संतोखीईं जिन्ही सचो सच धिआइआ॥
ओन्ही मंदै पैर न रखिओ कर सुक्रित धरम कमाइआ॥
ओन्ही दुनीआ तोड़े बंधना अंन पाणी थोड़ा खाइआ॥
तूं बखसीसी अगला नित देवह चड़ह सवाइआ॥
वडिआई वडा पाइआ॥७॥

संतोखीईं=संतोष रखनेवालों ने; **सुक्रित**=नेक कमाई, शुभ कर्म; **बखसीसी**=बख़्शिशें; **अगला**=बहुत ज़्यादा।

सरलार्थ: प्रभु के भक्तों ने सब्र संतोष का गुण धारण करते हुए, उस सच्चे की भक्ति की और उसके नाम का सुमिरन किया। वे ग़लत रास्ते पर नहीं गए। उन्होंने हक़-हलाल की कमाई और शुभ कर्म करते हुए, धर्म अर्थात् परमार्थ के मार्ग पर चलने का प्रयत्न किया। उन्होंने खान-पान की ओर ध्यान कम दिया और आत्मा को संसार के साथ बाँधनेवाले बंधन तोड़ लिए। हे प्रभु! तू बख़्शनहार है। तू एक बार बख़्शिश करके रुक नहीं जाता। तेरी बख़्शिश सदा जारी रहती है और दिन प्रतिदिन बढ़ती जाती है। तेरे संतोषी भक्त तेरी दया से तेरी भक्ति करते हुए तेरे साथ मिलाप कर लेते हैं।

❖ ***सेव कीती संतोखीईं जिन्ही सचो सच धिआइआ॥***—पिछली दो पउड़ियों में प्रभु प्राप्ति के लिए उसके नाम और पूरे गुरु की आवश्यकता पर प्रकाश डाला गया है। इस पउड़ी में सतगुरु की शरण द्वारा नाम का अभ्यास करनेवाले शिष्य की रहनी बयान कर रहे हैं। गुरु साहिब समझाते हैं कि प्रभु के भक्त संतोष धारण किए रहते हैं। उन्हें कुल मालिक पर पूरा विश्वास होता है। जो कुछ वह मालिक अपनी रहमत द्वारा बख़्श देता है, वे उसमें संतुष्ट रहते हुए उसकी भक्ति और उसके नाम की आराधना में लगे रहते हैं।

ओन्ही मंदै पैर न रखिओ कर सुक्रित धरम कमाइआ॥—इस पंक्ति में मालिक के सच्चे भक्त की करनी और रहनी के बहुत महत्त्वपूर्ण अंग पर प्रकाश डाला गया है। प्रभु का भक्त सबसे पहले पाप कर्मों से बचने का यत्न करता है। वाणी में 'सुक्रित' पद नेक यानी हक़-हलाल की कमाई तथा शुभ कर्म के लिए भी प्रयोग किया गया है और नाम के अभ्यास के लिए भी। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

संग देखै करणहारा काए पाप कमाईऐ॥
सुक्रित कीजै नाम लीजै नरक मूल न जाईऐ॥[40]

इस प्रसंग में पुण्य कर्म करते हुए नाम के अभ्यास पर बल दिया गया है। गुरु अर्जुन देव जी दूसरे प्रसंग में कहते हैं:

संतहो राम नाम निसतरीऐ॥
ऊठत बैठत हर हर धिआईऐ अनदिन सुक्रित करीऐ॥[41]

इस प्रसंग में नाम के सुमिरन को ही उत्तम करनी कहा गया है। गुरु रामदास जी ने भी नाम के सुमिरन को उत्तम सुक्रित कहा है:

जग सुक्रित कीरत नाम है मेरी जिंदुड़ीए
हर कीरत हर मन धारे राम॥[42]

ओन्ही दुनीआ तोड़े बंधना अंन पाणी थोड़ा खाइआ॥—प्रभु का प्रेम और प्रभु की भक्ति, प्रभु के साथ मिलाप करने में सहायक सिद्ध होती है। संसार का मोह जीव को संसार के साथ बाँधता है। प्रभु के भक्तों की रहनी साधारण दुनियादारों से भिन्न होती है। वे माया के बंधन बढ़ाने के बजाय तोड़ने का यत्न करते हैं। गुरु नानक देव जी 'वार माझ की' की सोलहवीं पउड़ी में संकेत करते हैं:

सैसारी आप खुआइअन जिनी कूड़ बोल बोल बिख खाइआ॥
चलण सार न जाणनी काम करोध विस वधाइआ॥[43]

आप कहते हैं कि मायामय संसार के मतवाले झूठ बोलते हैं और विषय-विकारों के ज़हर में लिप्त रहते हैं। गुरु नानक देव जी की वाणी है:

भगत करन हर चाकरी जिनी अनदिन नाम धिआइआ॥
दासन दास होए कै जिनी विचहो आप गवाइआ॥[44]

प्रभु के भक्त नम्रतापूर्वक प्रभु की भक्ति करते हैं। वे विषय-विकारों, इंद्रियों के भोगों से दूर रहते हुए प्रभु के नाम के साथ लिव जोड़कर रखते हैं। संसार के लोग पेट भरने के लिए खाते हैं जबकि प्रभु के भक्त भक्ति करने के लिए कम भोजन करते हैं। गुरु गोबिन्द सिंह जी की वाणी है:

अलप अहार सुलप सी निंद्रा दया छिमा तन प्रीत॥
सील संतोख सदा निरबाहिबो ह्वैबो त्रिगुण अतीत॥[45]

गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि जो भक्त कम खाता है, कम सोता है और हृदय में संयम, क्षमा, दया और संतोष आदि गुण धारण करता है, वह तीनों गुणों की रचना से ऊपर उठकर चौथे पद का अधिकारी बन जाता है।

गुरु अमरदास जी ने 'अनंद' की चौदहवीं पउड़ी में कहा है कि प्रभु के भक्त की रहनी दुनियादारों से भिन्न होती है। उनका मार्ग तलवार की धार से तीखा और बाल से भी बारीक़ होता है। '*लब लोभ अहंकार तज त्रिसना बहुत नाही बोलणा॥*'[46] वे न केवल कम खाते और कम सोते हैं, बल्कि बोलते भी कम हैं।

तूं बखसीसी अगला नित देवह चड़ह सवाइआ॥
वडिआई वडा पाइआ॥

प्रभु के भक्तों पर उस दयालु दाता की भरपूर रहमत होती है। वह उन पर अपनी बख़्शिश के भंडार खोल देता है। उस दयालु की दया से उसके भक्त भक्ति करते हुए उसमें समाकर उसका ही रूप हो जाते हैं।

सलोक और पउड़ी ८

सलोक महला १

पुरखां बिरखां तीरथां तटां मेघां खेतांह॥
दीपां लोआं मंडलां खंडां वरभंडांह॥
अंडज जेरज उतभुजां खाणी सेतजांह॥
सो मित जाणै नानका सरां मेरां जंताह॥
नानक जंत उपाए कै संमाले सभनाह॥
जिन करतै करणा कीआ चिंता भि करणी ताह॥
सो करता चिंता करे जिन उपाइआ जग॥
तिस जोहारी सुअसत तिस तिस दीबाण अभग॥
नानक सचे नाम बिन किआ टिका किआ तग॥१॥

दीपां=टापू; **लोआं**=लोक, देश; **खंडां**=धरती के नौ खंड; **वरभंडांह**=ब्रह्मांड; **खाणी**=चार खानियाँ—अंडज, जरायुज, स्वेदज, उद्भिज्ज; **सरां**=सरोवर; **मेरां**=पर्वतों; **जंताह**=जीव-जंतु; **सभनाह**=सब की; **ताह**=उसे; **जोहारी**=नमस्कार है; **सुअसत**=कल्याण, यश; **अभग**=अविनाशी; **तग**=जनेऊ।

सरलार्थ: गुरु नानक देव जी कहते हैं: प्रभु द्वारा सृजित पुरुषों, वृक्षों, तीर्थों, नदियों, समुद्रों के किनारों, बादलों, पर्वतों, खंडों, लोकों, मंडलों, ब्रह्मांडों, चारों खानियों के जीवों, समुद्रों और पहाड़ों में बसे जीवों की संख्या वही जानता है।

आप इस विचार का दूसरा पहलू बयान करते हैं कि न केवल प्रभु द्वारा उत्पन्न किए जीव सदा प्रभु के ध्यान में रहते हैं, बल्कि वह उनकी सँभाल भी करता है। उसे अपने द्वारा सृजित सृष्टि और अपने जीवों की पूरी-पूरी चिंता है। मेरा उस प्रभु को नमस्कार है; मैं उस परमात्मा का यश गाता हूँ जिसका दरबार निश्चल है। नाम के अभ्यास के बिना गले में जनेऊ डालने का और माथे पर तिलक लगाने का कोई लाभ नहीं है।

❖ गुरु साहिब समझा रहे हैं कि अनंत प्रकार की सृष्टि उस एक प्रभु की रचना है। वह रचयिता उसका रक्षक और प्रतिपालक है। प्रभु धन्य है, महिमा के योग्य है। प्रभु के साथ मिलाप की बड़ाई माथे पर तिलक लगाने या गले में जनेऊ पहनने से नहीं, बल्कि प्रभु के नाम के साथ लिव जोड़ने से प्राप्त होती है।

महला १

लख नेकीआ चंगिआईआ लख पुंना परवाण॥
लख तप उपर तीरथां सहज जोग बेबाण॥
लख सूरतण संगराम रण मह छुटह पराण॥
लख सुरती लख गिआन धिआन पड़ीअह पाठ पुराण॥
जिन करतै करणा कीआ लिखिआ आवण जाण॥
नानक मती मिथिआ करम सचा नीसाण॥ २॥

परवाण=प्रामाणिक, जिन्हें शास्त्रों ने सही स्वीकार किया हो; **बेबाण**=जंगल; **सूरतण**=बहादुरी; **संगराम**=युद्ध; **कीआ**=सृजन किया; **मती**=मनमत वाले कर्म; **मिथिआ**=झूठे, व्यर्थ; **करम**=दया-मेहर; **नीसाण**=पहचान।

सरलार्थ: गुरु नानक देव जी कहते हैं: नि:संदेह शास्त्रों में प्रामाणिक लाखों नेकियाँ, अच्छाइयाँ और पुण्य कर लिए जाएँ; चाहे तीर्थों पर या जंगलों में निवास करके योग के अनेक प्रकार के कठिन साधन अपना लिए जाएँ, लाखों बार वीरता दिखा ली जाए और युद्ध में प्राण भी क्यों न न्योछावर कर दिए जाएँ, चाहे वेदों, पुराणों आदि धर्म ग्रंथों का लाखों बार पाठ-विचार कर लिया जाए; लाखों किस्म का ज्ञान प्राप्त कर लिया जाए और अनेक प्रकार के ध्यान द्वारा सुरत अंदर जोड़ने का प्रयत्न कर लिया जाए, इससे कर्ता द्वारा रचित आवागमन के बंधन नहीं टूट सकते। जिस कर्ता ने सृष्टि की रचना की है, उसी ने इसमें जन्म- मरण का प्रसार किया हुआ है। इस चक्कर से छुटकारा उसके द्वारा धुर से लगाए 'बख़्शिश' के चिन्ह द्वारा होता है।

❖ गुरु साहिब समझा रहे हैं कि चाहे जीव लाखों मनचाहे साधन अपना ले, लेकिन वह प्रभु के साथ मिलाप नहीं कर सकता। वह चाहे नेकी, उत्तम गुणों और दान-पुण्य की मूरत बन जाए, अनेक तीर्थों पर स्नान कर ले और जंगलों में जाकर अनेक प्रकार की पूजा भक्ति में लग जाए, चाहे महान् योद्धा की तरह रणभूमि में प्राण त्याग दे, चाहे हर समय ग्रंथों और शास्त्रों के पाठ-विचार में लगा रहे या अपना ध्यान अंदर स्थिर करने का यत्न करता रहे, लेकिन जब तक उस दयालु दाता की दया नहीं होती, जीव को आवागमन के जाल से मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। मुक्ति अपनी चुतराई से नहीं, प्रभु की रहमत से प्राप्त होती है।

गुरु साहिब समझा रहे हैं कि प्रभु के हुक्म से रचना का अंग बना जीव मनचाहे शुभ कर्मों द्वारा नहीं, बल्कि प्रभु की दया द्वारा ही रचना से मुक्त होकर रचयिता से मिलाप कर सकता है। गुरु नानक देव जी *जप जी* में कहते हैं:

करमी आवै कपड़ा नदरी मोख दुआर॥
नानक एवै जाणीऐ सभ आपे सचिआर॥[47]

मनुष्य शरीर की प्राप्ति पूर्व कर्मों के अनुसार होती है, परंतु प्रभुरूपी सत्य का अनुभव और मुक्ति की प्राप्ति उसकी दया से होती है।

पउड़ी

सचा साहिब एक तूं जिन सचो सच वरताइआ॥
जिस तूं देह तिस मिलै सच ता तिन्ही सच कमाइआ॥
सतिगुर मिलिऐ सच पाइआ जिन्ह कै हिरदै सच वसाइआ॥
मूरख सच न जाणन्ही मनमुखी जनम गवाइआ॥
विच दुनीआ काहे आइआ॥ ८॥

सचा=अविनाशी; **साहिब**=मालिक, स्वामी; **सच कमाइआ**=सच्चे नाम की आराधना की।

सरलार्थ: गुरु नानक देव जी फ़रमाते हैं: हे प्रभु! एकमात्र तू ही सच्चा मालिक है। तू अविनाशी है। पूर्ण सत्य का प्रसार करनेवाला भी तू ही है।

जिसे तू दया करके सच्चा नाम बख़्शता है, वही तेरी आराधना या कमाई कर सकता है। सतगुरु दया करके जिनके हृदय में नामरूपी सत्य बसा देता है, प्रभु उन्हें ही मिलता है। मनमुख सत्य से अनजान हैं। वे मनमुखता के अधीन होकर मनुष्य जन्म व्यर्थ गँवा लेते हैं। आख़िर वे दुनिया में क्यों आए?

❖ गुरु साहिब समझा रहे हैं कि प्रभु ने नामरूपी सत्य को मुक्ति का साधन बनाया है। सतगुरु प्रभु में अभेद होकर उसका रूप हो चुके हैं। इसलिए नामरूपी सत्य की पहचान पूर्ण गुरु द्वारा होती है। जिनके हृदय में प्रभु की दया से नामरूपी सत्य समा जाता है, उन्हें सच्चे नाम के अभ्यास द्वारा प्रभु का ज्ञान हो जाता है। ऐसे भाग्यशाली जीवों का मनुष्य जन्म सफल हो जाता है। जो अज्ञानी, सतगुरु की शरण द्वारा नामरूपी सत्य का अनुभव नहीं करते, उनका मनुष्य जन्म व्यर्थ चला जाता है। ऐसे भाग्यहीन लोगों का संसार में आना व्यर्थ है। वे आवागमन के चक्कर से मुक्त होने का सुअवसर गँवा देते हैं।

सलोक और पउड़ी ९

सलोक महला १

पड़ पड़ गडी लदीअह पड़ पड़ भरीअह साथ॥
पड़ पड़ बेड़ी पाईऐ पड़ पड़ गडीअह खात॥
पड़ीअह जेते बरस बरस पड़ीअह जेते मास॥
पड़ीऐ जेती आरजा पड़ीअह जेते सास॥
नानक लेखै इक गल होर हउमै झखणा झाख॥१॥

गडी=गाड़ी, बैलगाड़ी; **भरीअह**=भर लें; **खात**=गड्ढे भाव तहख़ाने; **आरजा**=उम्र; **इक गल**=केवल नाम का सुमिरन; **झखणा झाख**=व्यर्थ में मेहनत।

सरलार्थ: पढ़-पढ़कर चाहे ग्रंथों शास्त्रों की गाड़ियाँ भर ली जाएँ और इन ग्रंथों को अपने साथ-साथ लेकर घूमते रहें; चाहे अनेक किताबें पढ़ ली जाएँ जिनसे किश्तियाँ भर जाएँ और बड़े-बड़े तहखाने ग्रंथों से भर लिए

जाएँ; चाहे सारा महीना पढ़ते जाएँ, चाहे सारा साल, सारी उम्र, साँस-साँस के साथ पढ़ते जाएँ, परंतु लेखे में लिखी जानेवाली एक बात केवल नाम का अभ्यास है, अन्य सब पढ़ना-पढ़ाना व्यर्थ की मेहनत करना है।

❖ गुरु नानक देव जी ग्रंथों और शास्त्रों के पाठ-विचार के विरुद्ध नहीं हैं। यदि ऐसा होता, तो आप न वाणी रचते और न ही गुरु अर्जुन देव जी आदि ग्रन्थ में अनेक पूर्ण पुरुषों की वाणी का संकलन करते। गुरु साहिब यह समझाने का प्रयत्न कर रहे हैं कि मुक्ति ग्रंथों और शास्त्रों के पढ़ने-पढ़ाने में नहीं, बल्कि उनमें अंकित उपदेशानुसार नाम का सुमिरन करने में है। गुरु नानक साहिब '*माझ राग की वार*' में कहते हैं:

पड़िआ मूरख आखीऐ जिस लब लोभ अहंकारा॥
नाउ पड़ीऐ नाउ बुझीऐ गुरमती वीचारा॥[48]

गुरु नानक देव जी का कथन है:

पढ़ीऐ नाम सालाह होर बुधीं मिथिआ॥
बिन सचे वापार जनम बिरथिआ॥[49]

ग्रंथों और शास्त्रों के पाठ-विचार का लाभ तभी है यदि प्रभु के नाम का सुमिरन किया जाए, नहीं तो सारी विद्वता और बुद्धिमता व्यर्थ है। नाम के अभ्यास के बिना जन्म व्यर्थ चला जाता है।

गुरु अमरदास जी का कथन है:

पड़णा गुड़णा संसार की कार है अंदर त्रिसना विकार॥
हउमै विच सभ पड़ थके दूजै भाए खुआर॥
सो पड़िआ सो पंडित बीना गुर सबद करे वीचार॥
अंदर खोजै तत लहै पाए मोख दुआर॥[50]

आप फ़रमाते हैं कि यदि मन तृष्णा और विकारों से भरा हुआ है तो ग्रंथों और शास्त्रों का पाठ-विचार केवल दिखावा है। इससे अहंकार बढ़ जाता है

और जीव प्रभु के प्रेम के बजाय दुनियावी मोह में फँस जाता है। सच्चा पंडित या ज्ञानी वह है जो सतगुरु द्वारा बताई विधि से शब्द (नाम) के अभ्यास द्वारा अंदर प्रभु मिलाप करके आवागमन के चक्कर से मुक्त हो जाता है।

कबीर साहिब की वाणी है:

किआ पड़ीऐ किआ गुनीऐ॥ किआ बेद पुरानां सुनीऐ॥
पड़े सुने किआ होई॥ जउ सहज न मिलिओ सोई॥
हर का नाम न जपस गवारा॥ किआ सोचह बारं बारा॥[51]

आप कहते हैं कि यदि सहज अवस्था प्राप्त नहीं हुई, तो वेदों और पुराणों के पाठ-विचार और पढ़ने या सुनने का क्या लाभ है? अज्ञानी जीव बार-बार शरीर की सफ़ाई करता है, परंतु प्रभु के नाम का सुमिरन नहीं करता जिससे मन की सफ़ाई होती है।

महला १

लिख लिख पड़िआ॥ तेता कड़िआ॥
बहु तीरथ भविआ॥ तेतो लविआ॥
बहु भेख कीआ देही दुख दीआ॥ सहो वे जीआ अपणा कीआ॥
अंन न खाइआ साद गवाइआ॥ बहु दुख पाइआ दूजा भाइआ॥
बसत्र न पहिरै॥ अहिनिस कहरै॥
मोन विगूता॥ किउ जागै गुर बिन सूता॥
पग उपेताणा॥ अपणा कीआ कमाणा॥
अल मल खाई सिर छाई पाई॥
मूरख अंधै पत गवाई॥ विण नावै किछ थाए न पाई॥
रहै बेबाणी मड़ी मसाणी॥ अंध न जाणै फिर पछुताणी॥
सतिगुर भेटे सो सुख पाए॥ हर का नाम मंन वसाए॥
नानक नदर करे सो पाए॥
आस अंदेसे ते निहकेवल हउमै सबद जलाए॥ २॥

कड़िआ=जलना-भुनना; **भविआ**=घूमना; **लविआ**=बोला; **सहो...कीआ**=हे जीव! तुम्हें अपने द्वारा किए कर्मों का स्वयं ही भुगतान देना पड़ेगा; **कहरै**=दुःख सहता है; **विगूता**=ख़्वार हुआ; **पग उपेताणा**=नंगे पाँव रहा; **अल मल**=गंदगी; **छाई**=राख; **पत**=इज़्ज़त; **बेबाणी**=उजाड़, जंगल; **मड़ी**=क़ब्रें; **मसाणी**=श्मशान; **अंदेसे**=चिंताएँ; **निहकेवल**=मुक्त।

सरलार्थ: पिछले श्लोक के भाव का विस्तार करते हुए गुरु नानक देव जी कहते हैं: धर्म ग्रंथों के पाठ-विचार का मतवाला इन पुस्तकों को जितना पढ़ता है और फिर आगे स्वयं जितना लिखता है, उतना अधिक परेशान होता है। जितना अधिक वह तीर्थों पर जाता है, उतना अधिक वाद-विवाद करता है। जितने अधिक भेष धारण करता है, शरीर को उतना अधिक दुःख देता है। वह हठकर्मों और तप साधना द्वारा भी शरीर को दुःख देता है। अब दुःख तो सहन करना ही पड़ेगा। यह उसका अपना मोल लिया हुआ कष्ट है।

आप कहते हैं: यदि यह अनाज नहीं खाता, तो अपने मुँह का स्वाद ख़त्म कर बैठता है। यह द्वैत में खो जाता है जिस कारण उसे अनेक कष्ट सहने पड़ते हैं।

यदि वस्त्र नहीं पहनता और नग्न रहता है, तो दिन-रात शरीर को गर्मी-सर्दी में दुःखी रखता है। यदि यह मौन धारण कर लेता है तो भी अपने-आपको ख़्वार करता है। अज्ञानता की नींद में सोया हुआ मौनी, गुरु की कृपा के बिना इस नींद से कैसे जाग सकता है?

यदि यह पाँव से नंगा रहता है तो इसे जो भी कष्ट पहुँचता है, अपनी की हुई भूल द्वारा पहुँचता है—यह स्वयं ही कष्टों को न्यौता देता है। यदि यह गंदे पदार्थ खाता है, तो समझो कि अपने सिर पर राख डाल रहा है। इस तरह से यह अज्ञानी मूर्खों की तरह अपनी इज़्ज़त गँवा रहा है। नाम के अभ्यास के बिना दूसरी कोई करनी प्रभु के घर में स्वीकृत नहीं है। यदि यह उजाड़ों या श्मशानों में रहता है तो अंत में पछताता है।

जो व्यक्ति प्रभु की कृपा से सतगुरु की शरण प्राप्त करके नाम को मन में बसा लेता है, उसे प्रभु के साथ मिलाप का सच्चा आनंद प्राप्त हो जाता है।

ऐसा भाग्यशाली जीव आशा-निराशा, अच्छे-बुरे आदि हर प्रकार की द्वैत से मुक्त हो जाता है। शब्द द्वारा उसके अहंकार का नाश हो जाता है और वह सब इच्छाओं, तृष्णाओं और चिंताओं से मुक्त हो जाता है।

❖ गुरु साहिब इस श्लोक में यह भाव दृढ़ करवाते हैं कि सतगुरु द्वारा समझाई युक्ति के अनुसार नाम के साथ लिव जोड़े बिना कोई भी अन्य साधन प्रभु के साथ मिलाप में सहायक सिद्ध नहीं हो सकता। आप समझा रहे हैं कि सभी बाहरी साधन स्वयं उत्पन्न किए दु:ख हैं—***सहो वे जीआ अपणा कीआ॥*** गुरु साहिब अपनी विचारधारा को स्पष्ट करते हुए उपदेश देते हैं:

1. विण नावै किछ थाए न पाई॥
2. सतिगुर भेटे सो सुख पाए॥ हर का नाम मंन वसाए॥
3. नानक नदर करे सो पाए॥

आप कहते हैं कि नाम के बिना सबकुछ व्यर्थ है। जो भाग्यशाली जीव सतगुरु की शरण द्वारा नाम को हृदय में धारण कर लेता है, वह हर प्रकार की चिंता से मुक्त हो जाता है और अहंकार का नाश करके प्रभु के साथ मिलाप कर लेता है, परंतु यह प्रभु की कृपा द्वारा ही संभव हो सकता है।

पउड़ी

भगत तेरै मन भावदे दर सोहन कीरत गावदे॥
नानक करमा बाहरे दर ढोअ न लहन्ही धावदे॥
इक मूल न बुझन्ह आपणा अणहोदा आप गणाइदे॥
हउ ढाढी का नीच जात होर उतम जात सदाइदे॥
तिन्ह मंगा जि तुझै धिआइदे॥ ९॥

सोहन=सुशोभित होते हैं; **करमा बाहरे**=भाग्यहीन; **ढोअ**=ओट, आसरा; **धावदे**=भटकते फिरते हैं; **अणहोदा**=गुण रहित; **आप**=अपने-आपको; **गणाइदे**=बड़ा बनकर दिखाते हैं; **ढाढी**=डमरू के आकार के साज़ को बजानेवाला।

सरलार्थ: हे निरंकार! तेरी भक्ति में लीन भक्त तुझे प्यारे लगते हैं। वे तेरे दर पर तेरा यश गाते हैं और तेरी महिमा करते हुए शोभायमान हो रहे हैं। हे प्रभु! जो भाग्यहीन हैं, उन्हें तेरे द्वार पर कोई जगह नहीं मिलती तथा वे बाहर ही भटकते फिरते हैं। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो अपनी वास्तविकता की पहचान तो करते नहीं और बिना सच्ची भक्ति के ही अपने-आपको गुणवान सिद्ध कर रहे हैं। हे प्रभु! मैं तेरा यश गानेवाला नीच जाति का 'ढाढी' हूँ, जबकि अन्य अपने आपको ऊँची जाति वाले कहलवाते हैं। मेरी यही विनती है कि मुझे उन भक्तों की संगति प्राप्त हो जाए जो तेरा ध्यान करते हैं और तेरी भक्ति में लीन हैं।

❖ गुरु साहिब पिछली पउड़ी के भाव का विस्तार करते हुए फ़रमाते हैं कि जो भक्त सब्र संतोष के गुण धारण करते हुए, बुरे कर्मों और विषय-विकारों से बचते हुए सतगुरु के उपदेशानुसार प्रभु के नाम का अभ्यास करते हैं, वही प्रभु को प्रिय हैं। आप सावधान करते हैं कि प्रभु की दया के बिना किसी को, कभी निज घर पहुँचने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हो सकता। भाग्यहीन मनमुख अपनी वास्तविकता की पहचान तो करते नहीं, परंतु अपनी महिमा का बखान अवश्य करते हैं। गुरु साहिब नम्रतापूर्वक प्रार्थना करते हैं: अन्य लोग बड़े या ऊँची जाति के हो सकते हैं परंतु मैं तेरे द्वार पर खड़ा तेरा यश गानेवाला छोटी जाति का केवल एक ढाढी हूँ। तू मुझ पर रहमत करके मुझे अपने उन प्यारों की संगति बख़्श, जो सदैव तेरी भक्ति में मग्न रहते हैं।

सलोक और पउड़ी १०

सलोक महला १

कूड़ राजा कूड़ परजा कूड़ सभ संसार॥
कूड़ मंडप कूड़ माड़ी कूड़ बैसणहार॥
कूड़ सुइना कूड़ रुपा कूड़ पैन्हणहार ॥
कूड़ काइआ कूड़ कपड़ कूड़ रूप अपार॥

कूड़ मीआ कूड़ बीबी खप होए खार॥
कूड़ कूड़ै नेह लगा विसरिआ करतार॥
किस नाल कीचै दोसती सभ जग चलणहार॥
कूड़ मिठा कूड़ माखिउ कूड़ डोबे पूर॥
नानक वखाणै बेनती तुध बाझ कूड़ो कूड़॥१॥

कूड़=झूठ, नाशवान्; **माड़ी**=हवेली; **रुपा**=चाँदी; **कपड़**=कपड़े; **मीआ**=पति; **माखिउ** =शहद; **पूर**=समूहों के समूह।

सरलार्थ: गुरु नानक देव जी कहते हैं: राजा झूठ है, प्रजा झूठ है। सारा संसार ही झूठ है। मंडप झूठे हैं। स्थायी तौर पर बनाये गए भवन झूठे हैं और उनमें रहनेवाले भी झूठे हैं। सोना झूठ है, चाँदी झूठ है और सोने-चाँदी के गहने पहननेवाले भी झूठे हैं। शरीर झूठे हैं, इनकी अद्‌भुत सुंदरता झूठी है और शरीर पर पहने जानेवाले वस्त्र भी झूठे हैं। पति झूठ है, पत्नी झूठ है और उनका एक दूसरे के लिए चिंतित या दु:खी होना भी झूठ है। अज्ञानी लोग उस अविनाशी प्रभु को भूलकर नश्वर शक्लों और पदार्थों के मोह में फँसे हुए हैं। सारा संसार नाशवान् है, इसलिए इसकी कोई भी वस्तु दोस्ती या प्रेम के योग्य नहीं है। यह मायामय संसार झूठा या नश्वर होने के बावजूद शहद जैसा मीठा लगता है। इस झूठे मायामय संसार के मोह ने समूहों के समूह भवसागर में डुबो दिए हैं। गुरु साहिब कहते हैं: मेरे मालिक! मेरी यही विनती है कि तेरे अलावा सबकुछ झूठ और नश्वर है।

❖ गुरु साहिब ने इस श्लोक में कहा है: 'किस नाल कीचै दोसती सभ जग चलणहार॥' इससे पता चलता है कि इस श्लोक में प्रयोग किए गए 'कूड़' शब्द से अभिप्राय 'नाशवान्' है। यह श्लोक 'चलणहार' और 'निहचल', 'अस्थिर' और 'स्थिर', 'नाशवान्' और 'अविनाशी' का भेद समझाता है। गुरु साहिब समझाते हैं कि प्रभु के अलावा प्रत्येक वस्तु चलायमान, अस्थिर या नाशवान् है। केवल वह प्रभु निश्चल और अविनाशी है। इसलिए मायामय संसार की नाशवान् वस्तुओं का मोह त्यागकर अविनाशी प्रभु के साथ प्रेम करना चाहिए।

कबीर साहिब की वाणी है:

मैला ब्रहमा मैला इंद॥ रवि मैला मैला है चंद॥
मैला मलता इह संसार॥ इक हर निरमल जा का अंत न पार॥
मैले ब्रहमंडाए कै ईस॥ मैले निस बासुर दिन तीस॥
मैला मोती मैला हीर॥ मैला पउन पावक अर नीर॥
मैले सिव संकरा महेस॥ मैले सिध साधिक अर भेख॥
मैले जोगी जंगम जटा सहेत॥ मैली काइआ हंस समेत॥
कह कबीर ते जन परवान॥ निरमल ते जो रामह जान॥[52]

आप कहते हैं कि सृष्टि की प्रत्येक वस्तु मैली या नश्वर है, केवल एक हरि ही निर्मल और अविनाशी है। जो उस हरि के साथ जुड़ जाते हैं, वे भी उसकी तरह निर्मल और अविनाशी हो जाते हैं।

महला १

सच ता पर जाणीऐ जा रिदै सचा होए॥
कूड़ की मल उतरै तन करे हछा धोए॥
सच ता पर जाणीऐ जा सच धरे पिआर॥
नाउ सुण मन रहसीऐ ता पाए मोख दुआर॥
सच ता पर जाणीऐ जा जुगत जाणै जीउ॥
धरत काइआ साध कै विच दे करता बीउ॥
सच ता पर जाणीऐ जा सिख सची ले॥
दइआ जाणै जीअ की किछ पुंन दान करे॥
सच तां पर जाणीऐ जा आतम तीरथ करे निवास॥
सतिगुरू नो पुछ कै बह रहै करे निवास॥
सच सभना होए दारू पाप कढै धोए॥
नानक वखाणै बेनती जिन सच पलै होए॥२॥

जाणीऐ=जान सकते हैं; **रिदै**=हृदय में; **कूड़**=झूठा, नाशवान्, माया; **हछा**=साफ़, निर्मल; **सच**=नामरूपी सत्य; **रहसीऐ**=आनंद प्राप्त हो; **करता**=प्रभु; **विच...बीउ**=उसमें नाम का बीज डाल दे; **सिख**=शिक्षा, उपदेश; **आतम निवास**=ठिकाना बना ले; **दारू**=औषधि, इलाज।

सरलार्थ: गुरु नानक देव जी कहते हैं कि प्रभुरूपी सत्य को तभी जाना जा सकता है अगर हृदय में प्रभु का निवास हो। जब हृदय में प्रभु को धारण कर लिया जाता है, तो कूड़ के मोह की मैल उतर जाती है। फिर नामरूपी सत्य तन-मन को निर्मल बना देता है। प्रभुरूपी सत्य को तभी जाना जा सकता है यदि हृदय में उसका प्रेम हो। जब सुरत नाम को सुनकर आनंद मग्न हो जाती है तब मुक्ति का द्वार प्राप्त हो जाता है।

गुरु साहिब इसी भाव को स्पष्ट करते हुए कहते हैं: सत्य तभी जाना जा सकता है, जब 'जीउ' भाव आत्मा को नाम के साथ जोड़ने की युक्ति का ज्ञान प्राप्त हो जाए और शरीररूपी धरती को पूरी तरह से तैयार करके, कर्ता उसमें नाम का बीज डाल दे। प्रभु या नामरूपी सत्य तभी प्राप्त हो सकेगा, जब पहले गुरु से सच्ची शिक्षा प्राप्त कर ली जाए और जीव दया के भाव से दान पुण्य किया जाए।

नाम या प्रभुरूपी सत्य की सूझ तभी हो सकती है जब भक्त सतगुरु से मार्ग पूछकर आत्मा के तीर्थ पर स्थायी निवास बना ले। फिर शब्द या नामरूपी औषधि सारे पापों और उनसे उत्पन्न होनेवाले दु:खों का नाश कर देती है। गुरु साहिब कहते हैं: मैं उन प्रभु भक्तों से जो सत्य के साथ जुड़ चुके हैं (सत्य की प्राप्ति के लिए) विनती करता हूँ।

❖ गुरु साहिब पिछले श्लोक में कह आए हैं कि केवल प्रभु ही सच्चा और अविनाशी है और संसार की अन्य प्रत्येक वस्तु नाशवान् है। मन में प्रश्न उत्पन्न होता है कि उस अविनाशी सत्य के साथ मिलाप कैसे किया जाए?

गुरु साहिब उपदेश देते हैं: ***सच ता पर जाणीऐ जा सच धरे पिआर॥ नाउ सुण मन रहसीऐ ता पाए मोख दुआर ॥***—हम जिस वस्तु से प्रेम करते हैं, उसकी प्राप्ति के लिए पूरा प्रयत्न करते हैं। जब हृदय में नाम का प्रेम जाग्रत

होता है, तो सुरत नाम के साथ जुड़ जाती है। इस प्रकार मन आनंद से भर जाता है और आवागमन से छुटकारा मिल जाता है।

दइआ जाणै जीअ की किछ पुंन दान करे॥—भाव यह है कि जब नाम भक्ति के वृक्ष को फल लगेगा, तब जीव स्वार्थ रहित होकर दया भाव से दूसरे लोगों को उस फल का दान करेगा। इस संदर्भ में गुरु अर्जुन देव जी फ़रमाते हैं:

जनम मरण दुहहू मह नाही जन परउपकारी आए॥
जीअ दान दे भगती लाइन हर सिउ लैन मिलाए॥[53]

प्रभु के सच्चे भक्त परोपकारी होते हैं। वे जीवों को प्रभु की भक्ति का सच्चा जीवन दान बख़्शकर परमात्मा के साथ मिला देते हैं।

सच तां पर जाणीऐ जा आतम तीरथ करे निवास॥
सतिगुरू नो पुछ कै बह रहै करे निवास॥

बाहरी तीर्थ शरीर के स्नान के लिए हैं। आत्म तीर्थ अंदर है, जिसमें स्नान करके मन और आत्मा निर्मल होते हैं। साधक को चाहिए कि सतगुरु के उपदेश पर अमल करके उस तीर्थ का स्थायी निवासी बन जाए। बाहरी तीर्थयात्री तो जगह-जगह अनेक तीर्थों पर भटकते रहते हैं, परंतु सतगुरु का शिष्य आत्म तीर्थ का स्थायी निवासी बन जाता है।

संत बेणी जी का कथन है:

इड़ा पिंगुला अउर सुखमना तीन बसह इक ठाई॥
बेणी संगम तह पिराग मन मजन करे तिथाई॥[54]

लोग प्रयाग के संगम को तीर्थराज कहते हैं। बेणी जी समझाते हैं कि सच्चा प्रयाग या तीर्थराज अंदर है। अंदर आँखों से ऊपर तीन सूक्ष्म नाड़ियाँ हैं—दायें तरफ़ इड़ा, बायें तरफ़ पिंगला और मध्य में सुषुम्ना। इनका संगम अंदर दसवें द्वार में है। उस तीर्थ में शब्द का स्नान करने से आत्मा पर चढ़ी जन्म-जन्म के कर्मों और संस्कारों की मैल उतर जाती है और यह निर्मल होकर परमात्मा के साथ मिलाप के योग्य बन जाती है।

गुरु अमरदास जी की वाणी है:

सचा तीरथ जित सत सर नावण गुरमुख आप बुझाए॥
अठसठ तीरथ गुर सबद दिखाए तित नातै मल जाए॥[55]

सच्चा तीर्थ जिसमें स्नान करने का फल अड़सठ तीर्थों के स्नान से उत्तम है और जिसमें स्नान करने से मन और आत्मा की मैल उतर जाती है, वह आपके अंदर है। वह तीर्थ शब्द यानी नाम है, जिसकी सूझ सतगुरु प्रदान करता है। गुरु नानक देव जी की वाणी है:

तीरथ नावण जाउ तीरथ नाम है॥
तीरथ सबद बीचार अंतर गिआन है॥[56]

सच्चा तीर्थ शब्द या नाम है। यह तीर्थ अंदर है। प्रभुरूपी सत्य का ज्ञान उस तीर्थ पर स्नान करने से ही प्राप्त होता है।

सच सभना होए दारू पाप कढै धोए॥
नानक वखाणै बेनती जिन सच पलै होए॥

गुरु साहिब समझाते हैं कि बाहरी तीर्थों का पानी शरीर की मैल धो सकता है, परंतु उसमें पापों की मैल को साफ़ करने का सामर्थ्य नहीं है। पापों की मैल को साफ़ करने का सामर्थ्य सच्चे नाम में है। गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि जिन्होंने अपने हृदय में प्रभु के सच्चे नाम को धारण कर लिया है, केवल वही पापों की मैल से मुक्त होकर प्रभु के साथ मिलाप का सौभाग्य प्राप्त कर सकते हैं। गुरु नानक देव जी ने *जप जी* में फ़रमाया है:

भरीऐ हथ पैर तन देह॥ पाणी धोतै उतरस खेह॥
मूत पलीती कपड़ होए॥ दे साबूण लईऐ ओह धोए॥।
भरीऐ मत पापा कै संग॥ ओह धोपै नावै कै रंग॥[57]

शरीर की मैल पानी के साथ और कपड़े को लगी मैल साबुन से साफ़ हो जाती है। पापों की मैल साफ़ करने का एक मात्र साधन प्रभु का नाम है।

पउड़ी

दान महिंडा तली खाक जे मिलै त मसतक लाईऐ॥
कूड़ा लालच छडीऐ होए इक मन अलख धिआईऐ॥
फल तेवेहो पाईऐ जेवेही कार कमाईऐ॥
जे होवै पूरब लिखिआ ता धूड़ तिन्हा दी पाईऐ॥
मत थोड़ी सेव गवाईऐ॥१०॥

महिंडा=मेरा; **तली खाक**=चरण धूलि; **कूड़ा**=झूठा; **इक मन**=एकाग्रचित्त होकर; **तेवेहो**=उस जैसा; **जेवेही**=जैसी; **कार कमाईऐ**=करनी करते हैं।

सरलार्थ: गुरु साहिब कहते हैं: मैं चाहता हूँ कि मुझे प्रभुरूपी सत्य के साथ एक हो चुके संतों के चरणों (पाँवों के तलवों) की धूलि दान के रूप में मिल जाए, ताकि मैं उसे मस्तक पर लगा लूँ। झूठे पदार्थों का लालच छोड़कर एक मन, एक चित्त होकर निरंकार प्रभु का ध्यान करना चाहिए। जैसी करनी करेंगे वैसा ही फल मिलेगा।

यदि कोई चाहे कि अपने-आप संतों की चरण धूलि प्राप्त कर ले तो यह असंभव है। उनकी चरण धूलि तभी मिलती है यदि प्रभु ने स्वयं धुर से कर्म लिखा हो। मनुष्य की अपनी बुद्धि तुच्छ है। यदि वह इस तुच्छ बुद्धि के अनुसार प्रभु की भक्ति करेगा, तो उसकी सेवा भक्ति व्यर्थ चली जाएगी।

❖ ***दान महिंडा तली खाक जे मिलै त मसतक लाईऐ॥***
कूड़ा लालच छडीऐ होए इक मन अलख धिआईऐ॥

गुरु साहिब उपदेश देते हैं कि जिसे मालिक के भक्तों की चरण धूलि मिल जाए, उसे अपने-आपको भाग्यशाली समझना चाहिए। झूठी और नाशवान् मायामय रचना का लोभ त्यागकर, उस अलख, अगम, अविनाशी प्रभु के ध्यान में लगना चाहिए। सतगुरु की चरण धूलि से भाव अपने मन की इच्छा को त्यागकर तन-मन से सतगुरु की शरण प्राप्त करना और उनके उपदेश पर चलना है। इसका आध्यात्मिक अर्थ अंतर में दिखाई देनेवाला शब्द या नाम का प्रकाश है। उस प्रकाश को ही संतों की चरण धूलि कहा गया है।

फल तेवेहो पाईऐ जेवेही कार कमाईऐ॥—गुरु साहिब का भाव है कि नम्रतापूर्वक संतों का कहना मानकर प्रभु का ध्यान करेंगे, तो प्रभु की प्राप्ति हो जाएगी। इसके विपरीत, यदि मन की मति पर चलकर नश्वर संसार के झूठे लालच में फँसे रहेंगे, तो इस कूड़ का ही अंग बने रहेंगे।

जे होवै पूरब लिखिआ ता धूड़ तिन्हा दी पाईऐ॥—किसी भी जीव को अपनी बल बुद्धि द्वारा प्रभु के भक्तों की संगति और शरण प्राप्त नहीं हो सकती। प्रभु के भक्तों की चरण धूलि केवल प्रभु द्वारा लिखे धुर के लेख द्वारा प्राप्त होती है। गुरु रामदास जी की वाणी है:

बिन भागा सतिगुर ना मिलै घर बैठिआ निकट नित पास॥[58]

आप एक अन्य प्रसंग में कहते हैं:

जिन मसतक धुर हर लिखिआ तिना सतिगुर मिलिआ राम राजे॥
अगिआन अंधेरा कटिआ गुर गिआन घट बलिआ॥[59]

सतगुरु के साथ मिलाप का सौभाग्य प्रभु द्वारा धुर दरगाह से लिखे दया के लेख द्वारा प्राप्त होता है। सतगुरु के मिलाप से अज्ञानता का अँधेरा दूर हो जाता है और अंदर ज्ञान का प्रकाश हो जाता है।

मत थोड़ी सेव गवाईऐ॥—गुरु साहिब सावधान करते हैं कि जो साधक प्रभु के भक्तों की संगति से भक्ति में लगा रहता है, वह अपने उद्देश्य की पूर्ति में सफल हो जाता है। जो अपनी बुद्धि के अनुसार उसकी भक्ति करता है, उसकी सारी मेहनत निष्फल हो जाती है। गुरु रामदास जी विनती करते हैं: 'गोबिंद जीउ सतसंगत मेल हर धिआईऐ॥'[60] मेरे प्यारे गोबिंद! अपने संतों और भक्तों की संगति बख़्श, ताकि हम उनके समझाने के अनुसार तेरी भक्ति कर सकें।

सलोक और पउड़ी ११

सलोक महला १

सच काल कूड़ वरतिआ कल कालख बेताल॥
बीउ बीज पत लै गए अब किउ उगवै दाल॥

जे इक होए त उगवै रुती हू रुत होए॥
नानक पाहै बाहरा कोरै रंग न सोए॥
भै विच खुंब चड़ाईऐ सरम पाह तन होए॥
नानक भगती जे रपै कूड़ै सोए न कोए॥१॥

सच काल=सत्य का अकाल पड़ गया है; **कूड़ वरतिआ**=हर तरफ़ झूठ का प्रसार है; **कल**=कलियुग में; **बेताल**=बेताले, ताल से भटके, भूत; **बीउ**=बीज; **बाहरा**=बिना; **कोरै**=कोरे कपड़े को; **खुंब चड़ाईऐ**=रंगा जाए; **रपै**=रँगा हो; **कोए**=बिलकुल।

सरलार्थ: गुरु नानक देव जी दु:ख प्रकट करते हुए कहते हैं: कलियुग में सत्य का अकाल पड़ गया है तथा प्रत्येक स्थान पर कूड़ का प्रसार है। कूड़ के प्रसार के कारण कूड़ की कालिख से लिप्त लोग भूत बने हुए दिखाई देते हैं। जिन्होंने सत्य का साबुत बीज बोया, वे सम्मान सहित निज घर वापस चले गए। जो लोग दो टुकड़े हुआ यानी दाल बन चुका बीज डाल रहे हैं उन्हें कभी सच्चे तथा पूरे बीजवाला फल प्राप्त नहीं हो सकेगा। बीज के उगने और फल देने के लिए आवश्यक है कि बीज साबुत हो और ऋतु के अनुकूल हो।

गुरु साहिब कहते हैं कि कोरे कपड़े (मांडीवाले कपड़े) पर रँग नहीं चढ़ सकता। उसे पहले एक बार धोना पड़ता है। उसी तरह कोरे मन को प्रेमरूपी सत्य के रंग में रँगने के लिए यह आवश्यक है कि इसे प्रभु के भय और 'सरम' भाव लज्जा की भट्ठी में चढ़ाया जाए। 'सरम' के अर्थ लज्जा भी किए गए हैं और उद्यम भी। जब मन प्रभु के प्रेम या नाम के रंग में रँग जाएगा, तो यह मायामय कूड़ के प्रभाव से मुक्त हो जाएगा।

❖ ***सच काल कूड़ वरतिआ कल कालख बेताल॥***—कलियुग में लोगों की हालत दयनीय है। प्रभु और उसके नाम का प्रेम तो जैसे कहीं खो गया है। हर तरफ़ मायामय रचना के मोह और मनमत का प्रसार है। अज्ञानी लोग भूतों की तरह सच्ची भक्ति के ताल से बे-ताल हो गए हैं। वे मनमानी भक्ति में उलझे हुए हैं। प्रभु की भक्ति की तरफ़ किसी विरले का ही ध्यान जाता है।

बीउ बीज पत लै गए अब किउ उगवै दाल॥—जिन्होंने नाम की भक्ति का साबुत बीज बोया है, वे सम्मान सहित प्रभु के घर में स्वीकार हुए।

जो लोग अन्य भक्तियों के दो हिस्सों में बँटा हुआ बीज बोते हैं, उनके हाथ ख़ाली रह जाते हैं।

जे इक होए त उगवै रुती हू रुत होए॥—गुरु साहिब सावधान करते हैं कि भक्ति का फल प्राप्त करने के लिए बीज का साबुत और ऋतु के अनुकूल बोना आवश्यक है। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

अब कलू आइओ रे॥ इक नाम बोवहो बोवहो॥
अन रूत नाही नाही॥ मत भरम भूलहो भूलहो॥
गुर मिले हर पाए॥ जिस मसतक है लेखा॥
मन रुत नाम रे॥ गुन कहे नानक हर हरे हर हरे॥[61]

इस प्रसंग में पउड़ी का सारा भाव समाया हुआ है। गुरु अमरदास जी ने यही भाव इस प्रकार प्रकट किया है:

कलजुग मह बहु करम कमाहे॥ ना रुत न करम थाए पाहे॥
कलजुग मह राम नाम है सार॥ गुरमुख साचा लगै पिआर॥
तन मन खोज घरै मह पाइआ॥ गुरमुख राम नाम चित लाइआ॥
गिआन अंजन सतिगुर ते होए॥ राम नाम रव रहिआ तिहु लोए॥
कलिजुग मह हर जीउ एक होर रुत न काई॥
नानक गुरमुख हिरदै राम नाम लेहो जमाई॥[62]

नानक पाहै बाहरा कोरै रंग न साए॥
भै विच खुंब चड़ाईऐ सरम पाह तन होए॥
नानक भगती जे रपै कूड़ै सोए न कोए॥

गुरु साहिब अपने भाव को दूसरे उदाहरण द्वारा स्पष्ट करने का यत्न करते हैं। आप समझाते हैं कि जैसे कोरे कपड़े को रँगने के लिए फिटकरी आदि की पाह लगानी पड़ती है, उसी प्रकार सुरत को प्रभु के भय और भक्ति के उद्यम की पाह चढ़ानी आवश्यक है। फिर इसके अंदर प्रभु के प्रेम का ऐसा पक्का रंग चढ़ जाता है जो फिर कभी नहीं उतरता।

महला १

लब पाप दुए राजा महता कूड़ होआ सिकदार॥
काम नेब सद पुछीऐ बह बह करे बीचार॥
अंधी रयत गिआन विहूणी भाह भरे मुरदार॥
गिआनी नचह वाजे वावह रूप करह सीगार॥
ऊचे कूकह वादा गावह जोधा का वीचार॥
मूरख पंडित हिकमत हुजत संजै करह पिआर॥
धरमी धरम करह गावावह मंगह मोख दुआर॥
जती सदावह जुगत न जाणह छड बहह घर बार॥
सभ को पूरा आपे होवै घट न कोई आखै॥
पत परवाणा पिछै पाईऐ ता नानक तोलिआ जापै॥ २॥

लब=लोभ; **महता**=वज़ीर; **सिकदार**=चौधरी; **नेब**=नायब; **सद**=बुलाकर; **रयत**=प्रजा; **विहूणी**=ख़ाली; **भाह**=तृष्णा की अग्नि; **वावह**=बजाते हैं; **वादा गावह**=लड़ाई के किस्से गाते हैं; **हिकमत**=चालाकी; **हुजत**=कोरी दलीलें; **संजै**=जोड़ना, जमा करना; **गावावह**=गँवा लेते हैं; **पत परवाणा**=प्रतिष्ठा का बाट; **ता...जापै**=इस तरह तोलने पर ही वास्तविकता का पता चलता है।

सरलार्थ: गुरु नानक देव जी कहते हैं: आज संसार की यह हालत हो गई है कि लोभ राजा है, पाप उसका वज़ीर है और झूठ चौधरी है। काम नायब यानी सहायक सेवक है। हर बात पर उसकी सलाह के अनुसार विचार किया जाता है। इनकी लपेट में आई अज्ञानी प्रजा की हालत अंधों के समान हो गई है। तृष्णा की अग्नि में जल रहे लोग मुर्दे के समान हैं, भाव वे आध्यात्मिक दृष्टि से मुर्दा हो चुके हैं। धर्म की अवस्था इतनी ख़राब हो चुकी है कि जो लोग नाचते गाते हैं, बाजे बजाते हैं और अनेक प्रकार के स्वाँग और शृंगार करते हैं, वे ज्ञानी कहलाते हैं। रासधारिये और उनके मुखिया ऊँची आवाज़ में तर्ज़ निकालकर युद्धों के प्रसंग गाते हैं और योद्धाओं की बहादुरी की प्रशंसा के गीत गाते हैं।

अज्ञानी पंडित चालाकी, हिकमत और अन्य कई साधनों द्वारा माया इकट्ठी करने के लोभ में फँसे हुए हैं। धार्मिक लोग अनेक प्रकार के

धर्म कर्म करते हैं और पुण्य कर्मों के फलस्वरूप मुक्ति द्वार की माँग करते हैं।

जो लोग अपने-आपको यति या ब्रह्मचारी कहलवाते हैं, वे भी इसकी वास्तविक युक्ति नहीं जानते और घर छोड़कर जंगलों में जा बैठते हैं। गुरु साहिब कहते हैं: आश्चर्य की बात है कि प्रत्येक इनसान पूर्ण होने का दावा करता है। कोई भी अपने-आपको किसी दूसरे से कम मानने को तैयार नहीं। यदि इन लोगों के कर्म, धर्म, ज्ञान आदि को तराज़ू के एक पलड़े में रखकर और दूसरे में प्रभु के दरबार से मिलनेवाले मान-सम्मान का बाट डालकर तोला जाए, तो पता चले कि वास्तविकता क्या है?

❖ ***लब पाप दुए राजा महता कूड़ होआ सिकदार॥***
काम नेब सद पुछीऐ बह बह करे बीचार॥
अंधी रयत गिआन विहूणी भाह भरे मुरदार॥

गुरु साहिब कलियुग की दयनीय अवस्था का वर्णन करते हैं। इस युग में हर तरफ़ झूठ, लोभ, पाप और विकारों का प्रसार है। केवल हाकिम ही आदर्शहीन नहीं है, प्रजा भी अज्ञानी और लोभी है। हक़-हलाल की कमाई के बजाय दूसरों का हक़ मारकर खाने का दस्तूर चल रहा है। गुरु नानक देव जी वाणी के एक अन्य प्रसंग में कहते हैं:

कल काती राजे कासाई धरम पंख कर उडरिआ॥
कूड़ अमावस सच चंद्रमा दीसै नाही कह चड़िआ॥
हउ भाल विकुंनी होई॥ आधेरै राह न कोई॥
विच हउमै कर दुख रोई॥ कहो नानक किन बिध गत होई॥[63]

कलियुग कैंची की तरह सबको काट रहा है। राजा-महाराजा कसाई की तरह निर्दयी हो गए हैं और धर्म का नामो निशान मिट रहा है। हर तरफ़ अज्ञानता का अंधकार फैला हुआ है, कहीं भी सत्य के ज्ञान का प्रकाश दिखाई नहीं देता। लोग बुरी तरह अहंकार के शिकार हैं। पता नहीं इनका उद्धार कैसे होगा।

गिआनी नचह वाजे वावह रूप करह सीगार॥
ऊचे कूकह वादा गावह जोधा का वीचार॥

रासधारियों के अगुवा को ज्ञानी कहा जाता है। जब रासधारियों के अगुवा ज्ञानी बनकर बैठ जाएँ, तो हम स्वयं ही अनुमान लगा सकते हैं कि धर्म की क्या दुर्दशा होगी। ऐसे ज्ञानी क्या करते हैं? वे शृंगार करके नाचते-गाते हैं। वे ऊँचे-ऊँचे स्वर में योद्धाओं की शूरवीरता के वृत्तांत सुनाते हैं। लोगों का सारा ज़ोर बाहरी क्रियाओं और मनोरंजन पर है। सच्ची रूहानियत की तरफ़ किसी का ध्यान ही नहीं है।

मूरख पंडित हिकमत हुजत संजै करह पिआर॥
धरमी धरम करह गावावह मंगह मोख दुआर॥

गुरु साहिब अफ़सोस प्रकट करते हुए कहते हैं कि पंडित लोगों के मन में धन इकट्ठा करने का लोभ समाया होता है, जिसकी पूर्ति के लिए वे चतुराई से कई प्रकार के उपदेश देते हैं। उनका वास्तविक उद्देश्य अपनी या लोगों की आत्मा का उद्धार करना नहीं, बल्कि माया इकट्ठी करना है। वे बड़े धर्मात्मा होने का दिखावा करते हैं। वे लोगों से अपनी प्रशंसा करवाकर यह आशा करते हैं कि उन्हें परम पद की प्राप्ति हो जाएगी।

जती सदावह जुगत न जाणह छड बहह घर बार॥

कुछ लोग इस भ्रम का शिकार हैं कि वे गृहस्थी त्यागकर काम वासना पर नियंत्रण कर लेंगे। उन्हें इंद्रियों को वश में करनेवाले साधन या युक्ति का ज्ञान नहीं है। संत नामदेव जी की वाणी है:

घर की नार तिआगै अंधा॥ पर नारी सिउ घालै धंधा॥
जैसे सिंबल देख सूआ बिगसाना॥ अंत की बार मूआ लपटाना॥
पापी का घर अगने माहि॥ जलत रहै मिटवै कब नाहि॥[64]

आप कहते हैं: अंधा (अज्ञानी) अपनी स्त्री को त्यागकर पराई स्त्रियों से संकोच नहीं करता। उसकी अवस्था उस तोते जैसी है जो सेमल के फूल की

सुंदरता देखकर उसमें चोंच मार देता है। उसकी चोंच सेमल के रेशों में फँस जाती है और वह तड़प-तड़पकर जान गँवा बैठता है। आप सावधान करते हैं कि पापी के मन में काम की प्रचंड अग्नि शांत नहीं होती बल्कि उसे जलाकर राख कर देती है।

गुरु अर्जुन देव जी लिखते हैं: '*देस छोड परदेसह धाइआ॥ पंच चंडाल नाले लै आइआ॥*'[65] त्यागी सबकुछ छोड़कर देश से विदेश चला गया, परंतु मन के अंदर बैठे पाँच विकार तो साथ ही रहे। आवश्यकता विकारों को देश निकाला देने की थी, न कि शरीर को।

सभ को पूरा आपे होवै घट न कोई आखै॥
पत परवाणा पिछै पाईऐ ता नानक तोलिआ जापै॥

गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि अपनी तरफ़ से तो सभी ज्ञानी, ध्यानी और धर्मात्मा बनकर दिखाते हैं, परंतु वास्तविक धर्मात्मा और ज्ञानी वही है जो मालिक की दरगाह में स्वीकार हो जाता है।

महला १

वदी सो वजग नानका सचा वेखै सोए॥
सभनी छाला मारीआ करता करे सो होए॥
अगै जात न जोर है अगै जीउ नवे॥
जिन की लेखै पत पवै चंगे सेई केए॥ ३॥

वदी=भाग्य में लिखी होनी; **वजग**=ज़रूर होकर रहेगी; **छाला मारीआ**=पूरा यत्न किया; **पत पवै**=जिनका मान रखा जाता है; **केए**=विरले।

सरलार्थ: पिछले श्लोक के भाव को आगे बढ़ाते हुए गुरु नानक देव जी फ़रमाते हैं कि स्वयं स्थापित मर्यादा के अनुसार वह सच्चा सृजनहार सबकुछ देख रहा है। विधि के विधान अनुसार (जब जीव उसके दरबार में पहुँचता है तो) सबकुछ उसके सामने स्पष्ट हो जाता है। संसाररूपी कर्मभूमि या रणभूमि में सफलता या विजय प्राप्त करने के लिए सभी

अपनी तरफ़ से प्रयत्न करते हैं, परंतु होता वही है जो उस कर्ता को पसंद है। परलोक या मालिक के दरबार में जाति और बल किसी काम नहीं आता। वहाँ जीव बिलकुल नये रूप में पहुँचता है। जिन्हें उस दरबार में मान-सम्मान मिल जाए, वे भाग्यशाली जीव निर्मल और श्रेष्ठ कहलाने के अधिकारी हैं।

❖ ***वदी सो वजग नानका सचा वेखै सोए॥***
सभनी छाला मारीआ करता करे सो होए॥

गुरु साहिब समझा रहे हैं कि जो कुछ होता है, विधि के विधान अनुसार होता है और कुछ भी उस कर्ता से छिपा हुआ नहीं है। सभी जीव अपनी तरफ़ से मनचाहे साधनों द्वारा मनचाही सफलता प्राप्त करने के लिए भरसक प्रयत्न करते हैं, परंतु जिसे जो कुछ मिलता है, कर्ता की रज़ा के अनुसार मिलता है।

अगै जात न जोर है अगै जीउ नवे॥—जाति और बल का संबंध शरीर के साथ है। मृत्यु के पश्चात् शरीर पीछे रह जाता है। कुल मालिक के दरबार में जीव हिंदू-मुसलमान, क्षत्रिय-ब्राह्मण, स्त्री-पुरुष, अमीर-ग़रीब, अनपढ़-विद्वान्, राजा या भिखारी के रूप में नहीं, विशुद्ध आत्मा के रूप में पहुँचता है। उस दरबार में मनुष्य की पहचान का आधार उसके कर्म और भक्ति भाव होता है।

गुरु नानक देव जी ने *जप जी* की 34वीं पउड़ी में फ़रमाया है:

1. करमी करमी होए वीचार॥ सचा आप सचा दरबार॥
2. कच पकाई ओथै पाए॥ नानक गइआ जापै जाए॥[66]

मालिक भी सच्चा है, उसका दरबार भी सच्चा है। उसने धरती में कर्म और फल का नियम लागू किया हुआ है। उसके दरबार में प्रत्येक जीव के किए हुए कर्मों की परख होती है। वहाँ इस बात का निर्णय किया जाता है कि कौन कच्चा है और कौन पक्का। जो लोग यहाँ कर्म और फल के नियम को स्वीकार नहीं करते, उन्हें भी वहाँ पहुँचकर यह सूझ हो जाती है कि यह नियम कोरी कल्पना नहीं, ठोस हक़ीक़त है।

जिन की लेखै पत पवै चंगे सेई केए॥—गुरु साहिब ने पिछले श्लोक का अंत इस विचार से किया है कि वास्तविक बड़ाई का पता उस समय चलता है जब कुल मालिक की दरगाह में जीव के कर्म तोले जाते हैं। आपने वार की तीसरी पउड़ी में फ़रमाया है: '*वडा होआ दुनीदार गल संगल घत चलाइआ॥ अगै करणी कीरत वाचीऐ बह लेखा कर समझाइआ॥*' मालिक के दरबार में सांसारिक बड़ाई नहीं, बल्कि किए हुए कर्म देखे जाते हैं। वास्तविक बड़ाई अपनी या सांसारिक दृष्टि से बड़े होने में नहीं है। जो लोग अपनी करनी और भक्ति भाव के कारण उसके दरबार में स्वीकृत हो जाते हैं, केवल वही सच्चे अर्थों में बड़े हैं।

पउड़ी

धुर करम जिना कउ तुध पाइआ ता तिनी खसम धिआइआ॥
एना जंता कै वस किछ नाही तुध वेकी जगत उपाइआ॥
इकना नो तूं मेल लैह इक आपहो तुध खुआइआ॥
गुर किरपा ते जाणिआ जिथै तुध आप बुझाइआ॥
सहजे ही सच समाइआ॥११॥

वेकी=भाँति-भाँति का; **खुआइआ**=गुमराह किया, दूर रखा; **बुझाइआ**=सूझ दे दी।

सरलार्थ: गुरु नानक देव जी कहते हैं: हे प्रभु! जिनका तूने स्वयं धुर से रहमत का लेख लिखा है, केवल वही तेरा ध्यान करते हैं। इन जीवों के वश में कुछ भी नहीं है। तूने संसार में अनेक प्रकार के जीव पैदा किए हैं। कुछ एक को तू अपने साथ मिला लेता है और दूसरों को तू स्वयं ही अपने से दूर रखता है। जिन्हें अपने साथ मिलाना चाहता है, उन्हें सतगुरु द्वारा अपना ज्ञान बख़्शकर अपना भेद प्रकट कर देता है और वे सहज ही तेरे सच्चे स्वरूप में समा जाते हैं।

❖ इस पउड़ी में यह भाव प्रकट कर रहे हैं कि प्रभु ने स्वयं विभिन्न प्रकार के जीवों का सृजन किया है। जिनके भाग्य में वह दयालु दाता धुर से लिख देता है, वे सतगुरु की कृपा से प्रभु के नाम के साथ जुड़कर सहज रूप से प्रभु

में समा जाते हैं। जिनके भाग्य में विधाता ने अपना मिलाप नहीं लिखा, वे इस रचना की भूलभुलैयाँ में भटकते रहते हैं। 'धुर कर्म', 'धुर का लेख', 'पूर्व के लेख', 'धुर मसतक का लेख' आदि द्वारा गुरु साहिब यह भाव दृढ़ करवाते हैं कि प्रभु के हुक्म से रचना का अंग बना जीव केवल उसकी दया से ही पुनः उसके साथ मिलाप कर सकता है। गुरु नानक देव जी वाणी के एक अन्य प्रसंग में फ़रमाते हैं:

जे तू किसै न देही मेरे साहिबा किआ को कढै गहणा॥
नानक बिनवै सो किछ पाईऐ पुरब लिखे का लहणा॥[67]

जब तक मालिक दया नहीं करता, कोई भी अपने बल पर उससे कुछ नहीं ले सकता। गुरु अमरदास जी फ़रमाते हैं:

आपे कर वेखै मारग लाए भाई तिस बिन अवर न कोई॥
जो धुर लिखिआ सो कोए न मेटै भाई करता करे सो होई॥[68]

जिसको मालिक ने अपने साथ मिलाना होता है, उसे स्वयं सही मार्ग दिखा देता है। जो कुछ होता है, धुर से लिखे लेख अनुसार होता है।

सलोक और पउड़ी १२

सलोक महला १

दुख दारू सुख रोग भइआ जा सुख ताम न होई॥
तूं करता करणा मै नाही जा हउ करी न होई॥
बलिहारी कुदरत वसिआ॥ तेरा अंत न जाई लखिआ॥१॥ रहाउ॥
जात मह जोत जोत मह जाता अकल कला भरपूर रहिआ॥
तूं सचा साहिब सिफत सुआल्हिउ जिन कीती सो पार पइआ॥
कहो नानक करते कीआ बाता जो किछ करणा सो कर रहिआ॥२॥

ताम=रोग; **करणा**=योग्य, सक्षम; **लखिआ**=समझा; **अकल**=पूर्ण; **भरपूर**=व्यापक; **सुआल्हिउ**=सुंदर।

सरलार्थ: दु:ख दवा है और वह सुख जो प्रभु भक्ति की तरफ़ ध्यान नहीं जाने देता, रोग के समान है। हे प्रभु! तू सक्षम है, जो कुछ होता है, तेरा किया होता है, मैं कुछ नहीं कर सकता, तू (सृष्टि की रचना करके) उसमें व्याप्त है। मैं तुझ पर बलिहारी जाता हूँ। तेरा अंत नहीं पाया जा सकता। उत्पन्न हुई प्रत्येक वस्तु में तेरी ज्योति व्यापक है और इस ज्योति के रूप में ही तू जाना जाता है। तू अपनी पूरी शक्ति से रचना के कण-कण में समाया हुआ है। जो कोई तेरी सुंदर महिमा गाता है, वह भवसागर से पार हो जाता है। गुरु नानक देव जी कहते हैं: तुम भी उस कर्ता की महिमा गाओ, वह कर्ता जो चाहता है, वही करता है।

❖ ***दुख दारू सुख रोग भइआ जा सुख ताम न होई॥***
तूं करता करणा मै नाही जा हउ करी न होई॥
बलिहारी कुदरत वसिआ॥ तेरा अंत न जाई लखिआ॥१॥ रहाउ॥

गुरु साहिब समझाते हैं कि बलिहारी जाएँ उस कर्ता पर जो संपूर्ण सृष्टि में व्याप्त है। उसकी गहराई अथवा रहस्य समझ पाना असंभव है। संसार में जो कुछ हो रहा है, उस सर्वशक्तिमान् की रज़ा के अनुसार हो रहा है। निर्बल जीव का यह समझना कि वह अपनी मर्ज़ी के अनुसार कुछ भी कर सकता है, भारी अज्ञानता है। इसी प्रकार जीव अपनी तुच्छ बुद्धि द्वारा मालिक के किए हुए कार्यों का भेद नहीं समझ सकता।

गुरु साहिब समझा रहे हैं कि दु:ख में जीव प्रभु को याद करता है जिस कारण दु:ख दवा का रूप बन जाता है। जब सुख के समय वह प्रभु को भुला देता है, तो वह सुख उसके लिए दु:ख रूप हो जाता है। जिन इंद्रियों के भोगों, विषय-विकारों और सांसारिक सुख-सुविधाओं को इनसान सुख का साधन समझकर इकट्ठा करता है, वे उसे प्रभु की याद भुला देती हैं। इससे प्रभु से वियोग का दु:ख बढ़ जाता है।

जात मह जोत जोत मह जाता अकल कला भरपूर रहिआ॥—जात—अरबी के शब्द *ज़ात* से है जिसका अर्थ है: वुजूद। गुरु साहिब कहते हैं कि यह भी तेरी आश्चर्यजनक लीला है कि प्रत्येक वुजूद में तेरी ज्योति है और

तुझे ज्योति रूप में ही जाना जा सकता है। तू ज्योति स्वरूप है और तेरी ज्योति सर्वव्यापक है। तू सर्वव्यापक है और अखंड, अभंग रहता है। गुरु अर्जुन देव जी फ़रमाते हैं: 'आद निरंजन प्रभ निरंकारा॥ सभ मह वरतै आप निरारा॥'[69] प्रभु सर्वव्यापक होने के बावजूद सबसे निर्लेप है।

तूं सचा साहिब सिफत सुआल्हिउ जिन कीती सो पार पइआ॥
कहो नानक करते कीआ बाता जो किछ करणा सो कर रहिआ॥२॥

गुरु साहिब फिर से पहली तीन पंक्तियों वाला भाव दृढ़ करवाते हुए कहते हैं कि वह कुल मालिक अविनाशी है। जो कोई उसकी महिमा अर्थात् भक्ति करता है, वह भवसागर से पार हो जाता है। उस कर्ता के रंग निराले हैं। वह अपनी रज़ा का मालिक है। उसे जैसा अच्छा लगता है, वह वैसा ही करता है। कोई दूसरा उसके किए को टाल नहीं सकता।

महला २

जोग सबदं गिआन सबदं बेद सबदं ब्राहमणह॥
खत्री सबदं सूर सबदं सूद्र सबदं परा क्रितह॥
सरब सबदं एक सबदं जे को जाणै भेउ॥
नानक ता का दास है सोई निरंजन देउ॥३॥

जोग=योग मार्ग वाले; **सबदं**=धर्म; **बेद...ब्राहमणह**=ब्राह्मण वेदों के ज्ञान को अपना धर्म समझते हैं; **सूर**=शूरवीरता; **परा क्रितह**=दूसरों की सेवा; **सरब सबदं**=सर्वसाँझा; **एक सबदं**=एक शब्द या नाम; **जे को**=यदि कोई; **भेउ**=भेद; **निरंजन देउ**=माया रहित, प्रकाश रूप प्रभु।

सरलार्थ: गुरु अंगद देव जी पहली दो पंक्तियों में 'सबदं' को धर्म के अर्थ में प्रयोग करते हुए कहते हैं: योग मार्ग की साधना करनेवाले ज्ञान की प्राप्ति को अपना धर्म या कर्तव्य मानते हैं। ब्राह्मण वेदों के उपदेश पर अमल करने को अपना धर्म मानते हैं। क्षत्रिय शूरवीरता को अपना धर्म स्वीकार करते हैं। दूसरों की सेवा को शूद्र का धर्म माना जाता है।

गुरु साहिब कहते हैं: यदि कोई वास्तविक रहस्य समझ ले, तो उसे पता चल जाएगा कि संपूर्ण मानव जाति के लिए एक ही धर्म है और वह है शब्द अर्थात् नाम। जो कोई इस भेद को समझ लेता है, वह माया रहित, प्रकाश रूप प्रभु का रूप हो जाता है और नानक उसका दास है।

❖ इस श्लोक द्वारा गुरु साहिब यह कल्याणकारी उपदेश दे रहे हैं कि समाज में अलग-अलग वर्ग के लोगों के लिए अलग-अलग धर्म या कर्तव्य का पालन करने का उपदेश दिया जाता है, परंतु जहाँ तक आत्मा का संबंध है, प्रत्येक मनुष्य का एक ही वास्तविक धर्म है, शब्द यानी नाम की पहचान द्वारा परमात्मा की पहचान करना। हिंदुओं ने समाज को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, चार वर्णों में विभाजित किया है। वे इस बात पर बल देते हैं कि प्रत्येक वर्ण के लोगों को अपने वर्ण के कर्तव्य पालन को ही अपना धर्म समझना चाहिए।

आरंभ में चार वर्णों का विभाजन अलग-अलग सामाजिक कार्यों की पूर्ति के लिए किया गया था। प्रत्येक वर्ण के लोगों को अपने कार्य को धर्म समझकर निष्काम भाव से करने का आदेश दिया जाता था। वर्ण का संबंध व्यवसाय से था, जन्म से नहीं। जब व्यवसाय बदल जाता था तो उसके साथ ही वर्ण भी बदल जाता था। धीरे-धीरे वर्ण प्रथा दूषित हो गई और वर्ण या जाति का संबंध व्यवसाय की जगह जन्म के साथ हो गया। व्यावहारिक दृष्टि से ब्राह्मण के घर पैदा हुए फ़ौजी को क्षत्रिय कहा जाना चाहिए। क्षत्रिय के घर पैदा हुए, परंतु व्यवसाय से व्यापारी को वैश्य कहा जाना चाहिए। शूद्र के घर पैदा हुए, परंतु अध्यापन का कार्य कर रहे व्यक्ति को ब्राह्मण कहा जाना चाहिए। वर्ण प्रथा व्यवसाय के बजाय जन्म के साथ जुड़ जाने के कारण समाज को सदियों से त्रासदी भोगनी पड़ रही है।

भगवान् श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं: हे अर्जुन! चाहे स्त्री हो या पुरुष, वैश्य, चांडाल या किसी भी कुल में पैदा हुआ कोई भी व्यक्ति जो मेरी शरण लेता है, उसे परम गति प्राप्त हो जाती है। जो सत्यवादी ब्राह्मण और राजारूप में ऋषि इस नाशवान् दुःखदायी संसार की तरफ़ से मुँह मोड़कर मेरी भक्ति करते हैं, उनकी बड़ाई वर्णन से परे है।[70]

आप समझा रहे हैं कि बड़ाई ब्राह्मण होने में नहीं, भगवान् के भक्त होने में है। जो भगवान् का भक्त बन जाता है, उसकी जाति-पाँति निरर्थक हो जाती है। वह भक्त निर्वाण पद प्राप्त कर लेता है, शेष सभी आवागमन के चक्कर से बँधे रहते हैं, चाहे उनका संबंध किसी भी धर्म, जाति या क़ौम के साथ क्यों न हो।

डॉ. राधा कृष्णन इन श्लोकों की व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि जब आँधी चलती है, तो वह छोटे-बड़े वृक्षों में भेद नहीं करती। इसी प्रकार जब मन में भक्ति की आँधी चलती है, तो वह स्त्री-पुरुष, रंग-रूप, क़ौम-नस्ल और जाति आदि का भेदभाव नहीं करती।*

रामायण में वर्णन है कि श्रीरामचंद्र जी वनवास के समय ऊँची जाति के ऋषियों और मुनियों के बजाय निम्न जाति की भीलनी की कुटिया में पहले पधारे, क्योंकि उसका हृदय प्रेम और नम्रता से भरा हुआ था। इसी प्रकार यह कथा भी प्रसिद्ध है कि महाभारत के युद्ध के पश्चात् पांडवों ने अश्वमेध यज्ञ किया। उनके ब्रह्मभोज में हज़ारों ऊँची जाति के अतिथियों ने भोजन किया। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी भोजन किया, परंतु आकाश में घंटे की आवाज़ न सुनाई दी और यज्ञ संपूर्ण न हुआ। श्रीकृष्ण जी महाराज के समझाने पर निम्न जाति के महात्मा सुपच को ब्रह्मभोज में शामिल होने के लिए विनती की गई। उनके द्वारा भोजन ग्रहण करने के पश्चात् ही यज्ञ संपूर्ण हुआ और आकाश में घंटे की आवाज़ सुनाई दी। वह महात्मा प्रभु में समाकर उसका रूप हो चुका था। प्रभु ने महात्मा की निम्न जाति के कारण उससे मिलाप करने से इंकार नहीं किया और श्रीकृष्ण जी महाराज ने भी उसे पूर्ण सम्मान दिया। एक तरफ़ भगवान् श्रीराम और भगवान् श्रीकृष्ण को पूजनीय मानना तथा दूसरी तरफ़ निम्न जाति के लोगों का निरादर करना परस्पर विरोधी है।

गुरु साहिब भी प्रस्तुत प्रसंग में यही भाव समझाने का यत्न कर रहे हैं कि संपूर्ण मानव जाति का सच्चा धर्म प्रभु के साथ मिलाप करना है और इस धर्म की पूर्ति का आधार शब्द (नाम) का अभ्यास है। इस साधन और मार्ग में

---

* *The Bhagavad Geeta, Commentary* by Swami Chidbhavananda, Sri Rama Krishna Tapovanam, 1969, PP. 520-21

वर्ण या जाति का कोई भेदभाव नहीं है। 'सरब सबदं एक सबदं' गुरु साहिब समझाते हैं कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के लिए मुक्ति का एकमात्र सर्वसाँझा साधन शब्द या नाम है।

गुरु नानक देव जी की वाणी है: 'हमरी जात पत सच नाउ॥ करम धरम संजम सत भाउ॥'[71] गुरु रामदास जी कहते हैं: 'हर आपे सबद सुरत धुन आपे॥'[72] आत्मा परमात्मा की अंश है। जो परमात्मा की जाति है, वही आत्मा की जाति है। परमात्मा, शब्द यानी नामरूप है इसलिए आत्मा भी शब्द यानी नामरूप है। आत्मा के धर्म और जाति की पहचान उसके बाहरी धर्म, संयम या जाति से नहीं, बल्कि उसके परमात्मा के प्रति सच्चे प्रेम से होती है। गुरु नानक देव जी ने दसवीं पउड़ी के साथ शामिल एक श्लोक में समझाया हैं:

अगै जात न जोर है अगै जीउ नवे॥
जिन की लेखै पत पवै चंगे सेई केए॥

परमात्मा के दरबार में जाति नहीं, बल्कि जीव की करनी और उसका भक्ति भाव देखा जाता है।

गुरु नानक देव जी वाणी के अन्य प्रसंग में फ़रमाते हैं:

जात जनम नह पूछीऐ सच घर लेहो बताए॥
सा जात सा पत है जेहे करम कमाए॥[73]

गुरु रामदास जी की वाणी है:

जात अजात नाम जिन धिआइआ तिन परम पदारथ पाइआ॥[74]

गुरु अर्जुन देव जी फ़रमाते हैं:

खत्री ब्राहमण सूद वैस उपदेस चहु वरना कउ साझा॥
गुरमुख नाम जपै उधरै सो कल मह घट घट नानक माझा॥[75]

गुरु साहिबान का उपदेश चारों वर्णों के लिए समान है। प्रभु का नाम समान रूप से प्रत्येक जीव के अंदर है और यह नाम ही प्रत्येक जीव के उद्धार का एकमात्र सच्चा साधन है।

महला २

एक क्रिसनं सरब देवा देव देवा त आतमा॥
आतमा बासुदेवस्यि जे को जाणै भेउ॥
नानक ता का दास है सोई निरंजन देउ॥४॥

क्रिसनं=प्रभु; **देवा देव**=देवताओं का भी देवता; **आतमा बासुदेवस्यि**=आत्मा, प्रभु का रूप है; **भेउ**=रहस्य।

सरलार्थ: गुरु अंगद देव जी पिछले श्लोक के भाव को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं: एक परमात्मा, सब देवताओं का देवता है और सब देवताओं की आत्मा है। यदि कोई इस रहस्य को समझ ले कि आत्मा भी परमात्मा का रूप है, तो वह भी निरंजन का रूप हो जाएगा और नानक उसका दास है।

❖ इस श्लोक में दो मुख्य भाव हैं: पहला यह कि वह निराकार प्रभु सब देवी-देवताओं का इष्ट अर्थात् पूजनीय है। इसलिए किसी दूसरे इष्ट के बजाय केवल एक निराकार प्रभु की पूजा भक्ति करनी चाहिए। दूसरा भाव यह है कि जीव की वास्तविकता उसकी आत्मा है। आत्मा परमात्मा की अंश है और परमात्मा की पहचान का आधार आत्मा की पहचान है। जब आत्मा शरीर, इंद्रियों और माया के परदे उतारकर, अपने वास्तविक स्वरूप की पहचान कर लेती है, तो इसे सहज रूप से ही परमात्मा की भी पहचान हो जाती है। फिर जीवात्मा उस निराकार ज्योति स्वरूप में समाकर उसका ही रूप हो जाती है।

गुरु नानक देव जी अन्य प्रसंग में फ़रमाते हैं:

जिनी आतम चीनिआ परमातम सोई॥
एको अंम्रित बिरख है फल अंम्रित होई॥[76]

परमात्मा अमृत रूप है। उसका फल यानी नाम भी अमृत से भरपूर है। जो आत्मा की पहचान द्वारा परमात्मा की पहचान कर लेता है, वह परमात्मा का रूप हो जाता है। गुरु नानक देव जी कहते हैं:

सूची काइआ हर गुण गाइआ॥ आतम चीन रहै लिव लाइआ॥
आद अपार अपरंपर हीरा॥ लाल रता मेरा मन धीरा॥[77]

जो व्यक्ति हरि के साथ लिव लगाकर अपने आत्मस्वरूप की पहचान कर लेता है, उसका प्रभु के साथ मिलाप हो जाता है और उसका मन सदैव प्रभु के प्रेम के रंग में रँगा रहता है।

महला १

कुंभे बधा जल रहै जल बिन कुंभ न होए॥
गिआन का बधा मन रहै गुर बिन गिआन न होए॥५॥

कुंभे=घड़ा; **बधा**=बँधा हुआ।

सरलार्थ: गुरु नानक देव जी कहते हैं कि बिना पानी के घड़ा नहीं बन सकता और पानी को टिकाने के लिए घड़े की आवश्यकता होती है। इसी तरह ज्ञान के बिना मन को वश में नहीं किया जा सकता और गुरु के बिना ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता।

❖ गुरु साहिब समझा रहे हैं कि आत्मा और परमात्मा के बीच एकमात्र रुकावट मन है। मन को सतगुरु के ज्ञान यानी नाम अभ्यास द्वारा वश में किया जा सकता है और नाम का ज्ञान सतगुरु से प्राप्त होता है।

गुरु साहिब ग्रंथों और शास्त्रों के पाठ-विचार से प्राप्त होनेवाले ज्ञान की नहीं, बल्कि प्रभु के मिलाप से प्राप्त होनेवाले निजी अनुभव की तरफ़ संकेत कर रहे हैं। आप फ़रमाते हैं कि निजी आंतरिक अनुभव सतगुरु की कृपा से प्राप्त होता है। आप वाणी के अन्य प्रसंग में कहते हैं: '*भाई रे गुर बिन गिआन न होए॥ पूछहो ब्रहमे नारदै बेद बिआसै कोए॥*'[78] ब्रह्मा से भाव सृष्टि के कर्ता से है। नारद को भक्त शिरोमणि माना जाता है। ऋषि वेदव्यास को वेदांत सूत्र का कर्ता माना जाता है। गुरु साहिब कहते हैं कि जिस किसी को, जब भी प्रभु की भक्ति द्वारा प्रभु के साथ मिलाप का ज्ञान प्राप्त हुआ है, गुरु द्वारा हुआ है। गुरु नानक देव जी वाणी के अन्य प्रसंग में दोहरा भाव प्रकट करते हैं:

1. गिआन गिआन कथै सभ कोई॥ कथ कथ बाद करे दुख होई॥
   कथ कहणै ते रहै न कोई॥ बिन रस राते मुकत न होई॥

2. गिआन धिआन सभ गुर ते होई॥ साची रहत साचा मन सोई॥[79]

केवल चर्चा करने से किसी को कुछ प्राप्त नहीं होता। प्रभु का ध्यान और उसके साथ मिलाप का ज्ञान सतगुरु से प्राप्त होता है।

पउड़ी

पड़िआ होवै गुनहगार ता ओमी साध न मारीऐ॥
जेहा घाले घालणा तेवेहो नाउ पचारीऐ॥
ऐसी कला न खेडीऐ जित दरगह गइआ हारीऐ॥
पड़िआ अतै ओमीआ वीचार अगै वीचारीऐ॥
मुह चलै सो अगै मारीऐ॥१२॥

ओमी=अनपढ़; **घालणा**=करनी; **नाउ पचारीऐ**=नाम प्रसिद्ध हो जाता है; **कला**=खेल; **अगै**=आगे जाकर, दरगाह में; **मुह चलै**=जो मुँह-ज़ोर होकर चलता है; **अगै मारीऐ**=उसे दरगाह में मार खानी पड़ती है भाव दुर्गति होती है।

सरलार्थ: यदि विद्वान् व्यक्ति पापी हो और साधु अनपढ़ हो, तो उस साधु को इसलिए सज़ा नहीं देनी चाहिए कि वह अनपढ़ है और विद्वान् को (अपने किए की) इसलिए माफ़ी नहीं मिलनी चाहिए कि वह विद्वान् है। जिस तरह का कोई कार्य करता है, उसी तरह से वह मशहूर हो जाता है।

संसार में ऐसा खेल नहीं खेलना चाहिए जिससे प्रभु की दरगाह में बाज़ी हार जाएँ। उसके दरबार में विद्वानों और अनपढ़ों को उनके कर्मों के हिसाब से फल मिलता है। जो मुँहज़ोर होकर मनमाने कर्म करता है, वह उसके दरबार में पहुँचकर मार खाता है।

❖ गुरु नानक देव जी फ़रमाते हैं कि मालिक के दरबार में जीव की परख का आधार उसका ज्ञान नहीं, बल्कि उसके कर्म होते हैं। जिस प्रकार संसार में चाहे कोई विद्वान् हो या अनपढ़, उसकी प्रसिद्धि उसके कर्मों के कारण होती है, उसी प्रकार चाहे कोई धर्म ग्रंथों का ज्ञाता हो या अनपढ़ साधु, कुल मालिक के दरबार में दोनों के कर्म देखे जाते हैं। पापी को इस आधार पर नहीं बख़्शा

जाएगा कि वह विद्वान् है और साधु को इस आधार पर सज़ा नहीं दी जाएगी कि वह अनपढ़ है।

गुरु नानक देव जी *जप जी* में फरमाते हैं: '*करमी करमी होए वीचार॥ सचा आप सचा दरबार॥*'[80] उस सच्चे दरबार में परख का आधार कर्म हैं न कि विद्या, धर्म, जाति, धन-दौलत, मान-सम्मान आदि। गुरु अर्जुन देव जी का कथन है: '*जो प्राणी गोविंद धिआवै॥ पड़िआ अणपड़िआ परम गत पावै॥*'[81] अनपढ़ हो या विद्वान्, जो कोई प्रभु के नाम का सुमिरन करता है वही उसके दरबार में स्वीकार हो जाता है।

गुरु नानक देव जी 21 वीं पउड़ी में फ़रमाते हैं: '*मंदा मूल न कीचई दे लंमी नदर निहालीऐ॥ जिउ साहिब नाल न हारीऐ तेवेहा पासा ढालीऐ॥*' प्रत्येक कार्य के अंत को सामने रखते हुए कर्म करना चाहिए। ऐसा खेल बिलकुल नहीं खेलना चाहिए जिससे मालिक के दरबार में बाज़ी हार जाएँ। गुरु अमरदास जी का कथन है: '*ऐसा कंम मूले न कीचै जित अंत पछोताईऐ॥*'[82] संसार में ऐसा कर्म नहीं करना चाहिए जिस की वजह से अंत में पछताना पड़े।

सलोक और पउड़ी १३

सलोक महला १

नानक मेर सरीर का इक रथ इक रथवाह॥
जुग जुग फेर वटाईअह गिआनी बुझह ताह॥
सतजुग रथ संतोख का धरम अगै रथवाह॥
त्रेतै रथ जतै का जोर अगै रथवाह॥
दुआपुर रथ तपै का सत अगै रथवाह॥
कलजुग रथ अगन का कूड़ अगै रथवाह॥१॥

मेर=सबसे ऊपर रहनेवाला प्रधान मनका; **रथवाह**=रथ चलानेवाला; **वटाईअह**=बदलते रहते हैं; **बुझह**=जान लेते हैं; **जतै**=संयम का; **तपै**=तप का।

सरलार्थ: गुरु नानक देव जी फ़रमाते हैं कि चौरासी की माला का मेरु यानी सबसे ऊपर रहनेवाला प्रधान मनका (मध्यमणि), मनुष्य शरीर है। इस मनुष्य जीवन की यात्रा पूरी करने के लिए एक रथ और दूसरा उस

रथ को चलानेवाला रथवान है। प्रत्येक युग के अनुसार ये दोनों बदलते रहते हैं, इस तथ्य को केवल ज्ञानी लोग ही समझ सकते हैं। गुरु साहिब युगों के प्रवाह के चार भागों में उस समय के रथ और रथवान के बारे में समझाते हैं। आप कहते हैं कि सतयुग में 'संतोष' का रथ था, भाव उस समय लोगों में संतोष का भाव प्रबल था। 'धर्म' रथवान था, भाव वे धर्म से दिशा लेकर सारे कार्य करते थे। त्रेता युग में 'संयम' या इंद्रियों को वश में रखना रथ था और रथवान 'बल' था। द्वापर में रथ 'तप' का हो गया और इसका रथवान 'सत्य' भाव पुण्य दान का हो गया। कलियुग में रथ 'अग्नि' का है और इसका रथवान 'झूठ' है।

❖ ***नानक मेर सरीर का इक रथ इक रथवाह॥***
जुग जुग फेर वटाईअह गिआनी बुझह ताह॥

गुरु साहिब कहते हैं कि मनुष्य शरीर चौरासी की माला के 'मेर' या प्रधान मोती के समान है। युग-युग में शिरोमणि भावों का रथ भी बदलता रहता है और रथवान भी बदलता रहता है। प्रत्येक युग में हृदय में कोई शिरोमणि भाव होता है जो रथ को विशेष दिशा में चलाता है। रथ पर सवार जीव किसी न किसी संकल्प, इच्छा या तृष्णा के अधीन रहता है, जिस कारण उसका आवागमन का चक्कर युगों तक चलता रहता है। कोई विरला ज्ञानी ही इस रहस्य को समझ पाता है कि जीव को जन्म-मरण के चक्कर के साथ बाँधकर रखनेवाला मुख्य कारण उसकी तृष्णा है।

सतजुग रथ संतोख का धरम अगै रथवाह॥—सतयुग के लोग धार्मिक थे और संतोष धारण किए हुए थे। उनका बल मायामय पदार्थों से नहीं, बल्कि धर्म और परमार्थ से था। वे इस लोक की सफलता के बजाय अपने परलोक को सुधारने की ओर ध्यान देते थे। गुरु नानक देव जी वाणी के अन्य प्रसंग में कहते हैं:

सतजुग सत संतोख सरीरा॥ सत सत वरतै गहिर गंभीरा॥[83]

सतयुग में लोग सत्य और धर्म के मार्ग पर चलते थे। गुरु रामदास जी की वाणी है:

सतजुग सभ संतोख सरीरा पग चारे धरम धिआन जीउ॥
मन तन हर गावह परम सुख पावह॥
हर हिरदै हर गुण गिआन जीउ॥[84]

सतयुग में धर्म के चार स्तंभ क़ायम थे। लोगों का आदर्श सत्य का ज्ञान प्राप्त करना था और उनका ध्यान प्रभु भक्ति पर था।

त्रेतै रथ जतै का जोर अगै रथवाह॥—सतयुग में लोग सतोगुणी स्वभाव के थे, लेकिन त्रेता युग में 'सत' के स्थान पर 'बल' रथवान बन गया। लोगों का ध्यान शूरवीरता की तरफ़ हो गया। सभी कर्म शूरवीरता को ध्यान में रखकर किए जाने लगे। शारीरिक शक्ति को बढ़ाने और क़ायम रखने के लिए संयम यानी इंद्रियों को वश में करने पर ध्यान दिया जाने लगा। गुरु नानक देव जी वाणी के अन्य प्रसंग में लिखते हैं:

त्रेतै धरम कला इक चूकी॥ तीन चरण इक दुबिधा सूकी॥[85]

त्रेता युग में धर्म के तीन पाँव रह गए भाव धर्म और सत्य का प्रभाव कम हो गया तथा अनेक प्रकार के संयम का ज़ोर बढ़ गया। गुरु रामदास जी की वाणी है:

तेता जुग आइआ अंतर जोर पाइआ जत संजम करम कमाए जीउ॥
पग चउथा खिसिआ त्रै पग टिकिआ मन हिरदै क्रोध जलाए जीउ॥[86]

त्रेता युग में लोगों ने शूरवीरता को जीवन का आदर्श बना लिया। कई लोगों ने युद्ध में वीरगति को प्राप्त करने को ही स्वर्ग की प्राप्ति का साधन समझना शुरू कर दिया। लोगों का झुकाव काम को वश में करने पर हो गया। क्षमा और सहनशीलता के स्थान पर मन में क्रोध और ईर्ष्या का निवास हो गया।

दुआपुर रथ तपै का सत अगै रथवाह॥—द्वापर में तपस्या और दान-पुण्य पर बल दिया गया। दान-पुण्य, तीर्थ-व्रत और अनेक प्रकार के हठकर्मों को प्राथमिकता दी जाने लगी। गुरु नानक देव जी लिखते हैं:

दइआ दुआपुर अधी होई॥ गुरमुख विरला चीनै कोई॥
दुए पग धरम धरे धरणीधर गुरमुख साच तिथाई हे॥[87]

द्वापर में धर्म के दो पाँव रह गए। भाव सत्य, धर्म, क्षमा और दया के भाव अधिक निर्बल हो गए। गुरु रामदास जी लिखते हैं:

जुग दुआपुर आइआ भरम भरमाइआ हर गोपी कान्ह उपाए जीउ॥
तप तापन तापह जग पुंन आरंभह अत किरिआ करम कमाए जीउ॥[88]

द्वापर में सत्य और धर्म का भाव अधिक निर्बल होता गया तथा अज्ञानता और भ्रम का विस्तार हो गया। श्रीकृष्ण जी ने अवतार धारण किया और उन्होंने वृंदावन में गोपियों के साथ अपनी लीला दिखाई। गुरु नानक देव जी पाँचवीं पउड़ी में शामिल श्लोकों में संकेत कर आए हैं:

सतीआ मन संतोख उपजै देणै कै वीचार॥
दे दे मंगह सहसा गूणा सोभ करे संसार॥

दानी लोग दान देकर प्रसन्न होते हैं, परंतु मन में यह भाव होता है कि इससे संसार में मान-सम्मान मिलेगा और जितना दान करेंगे, उससे हज़ार गुणा अधिक फल मिलेगा। इस प्रकार के दान को धर्म और परमार्थ का अंग नहीं माना जा सकता। गुरु साहिब सावधान कर रहे हैं कि सच्चे गुरुमुखों की शरण प्राप्त न होने के कारण लोग अनेक प्रकार के भ्रमों का शिकार हो गए।

कलजुग रथ अगन का कूड़ अगै रथवाह॥—कलियुग में लोगों की अवस्था और भी दयनीय हो गई। पिछले युगों में सत्य, धर्म, सदाचार, संयम और दान-पुण्य आदि के गुण थे, परंतु कलियुग में आशा तृष्णा की अग्नि प्रचंड हो गई। विषय-विकारों का ज़ोर बढ़ गया और लोगों ने अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए झूठ और फ़रेब का खुलकर प्रयोग करना शुरू कर दिया। गुरु नानक देव जी कहते हैं:

कली काल मह इक कल राखी॥ बिन गुर पूरे किनै न भाखी॥
मनमुख कूड़ वरतै वरतारा बिन सतिगुर भरम न जाई हे॥[89]

कलियुग में धर्म का केवल एक पाँव रह गया भाव सत्य और धर्म का बल नाममात्र ही शेष रह गया। लोगों ने गुरु के उपदेश पर चलने के बजाय मन

का कहना मानकर सत्य की जगह झूठ का सहारा लेना शुरू कर दिया। उनका ध्यान मायारूपी कूड़ की तरफ़ हो गया। ज्ञान और विवेक का बल कम हो गया और अज्ञानता का अंधकार बढ़ गया। गुरु नानक देव जी फ़रमाते हैं:

कल होई कुते मुही खाज होआ मुरदार॥
कूड़ बोल बोल भउकणा चूका धरम बीचार॥[90]

कलियुग में लोग श्वान (कुत्ते) की भाँति भूखे और निर्लज्ज हो गए। उन्होंने पराए धन पर अधिकार करना ही अपना धर्म बना लिया। लोगों ने निर्लज्ज होकर झूठ का प्रयोग करना शुरू कर दिया।

भाई गुरदास जी की वाणी है:

जुग जुग मेर सरीर का बासना बधा आवै जावै।
फिर फिर फेर वटाईऐ गिआनी होए मरम कउ पावै।[91]

आप समझाते हैं कि जीवात्मा अलग-अलग इच्छाओं और वासनाओं की पूर्ति के लिए युगों-युगों तक चौरासी के चक्कर से बँधी रहती है। कोई विरला भाग्यशाली है जो इस रहस्य को समझता है कि इच्छा या तृष्णा जीव के अनंत काल तक चौरासी से बँधे रहने का मुख्य कारण है। जब तक जीव सांसारिक इच्छाओं की तरफ़ से ध्यान को मोड़कर हृदय में प्रभु के प्रेम और भक्ति की प्रबल चाह नहीं रखता, उसका आवागमन के चक्कर से मुक्ति प्राप्त कर पाना असंभव है।

महला १

साम कहै सेतंबर सुआमी सच मह आछै साच रहे॥
सभ को सच समावै॥
रिग कहै रहिआ भरपूर॥ राम नाम देवा मह सूर॥
नाए लइऐ पराछत जाहे॥ नानक तउ मोखंतर पाहे॥
जुज मह जोर छली चंद्रावल कान्ह क्रिसन जादम भइआ॥

पारजात गोपी लै आइआ बिंद्राबन मह रंग कीआ॥
कल मह बेद अथरबण हूआ नाउ खुदाई अलह भइआ॥
नील बसत्र ले कपड़े पहिरे तुरक पठाणी अमल कीआ॥
चारे वेद होए सचिआर॥ पड़ह गुणह तिन्ह चार वीचार॥
भाउ भगति कर नीच सदाए॥ तउ नानक मोखंतर पाए॥ २॥

साम=सामवेद; **सेतंबर**=सफ़ेद कपड़े, श्वेत केतू; **आछै**=आता है; **रिग**=ऋग्वेद; **सूर**=बलवान्; **नाए**=नाम; **जुज**=यजुर्वेद; **जोर**=ज़ोर से; **कान्ह**=श्रीकृष्ण का उपनाम; **जादम**=यादव वंश; **पारजात**=इच्छाएँ पूरी करनेवाला कल्प वृक्ष; **गोपी**=सत्यभामा गोपी; **रंग**=मौज-मस्ती; **कल**=कलियुग में; **अथरबण**=अथर्ववेद; **अलह**=अल्लाह; **अमल**=हुकूमत; **चार**=सुंदर; **मोखंतर**=मुक्ति।

सरलार्थ: इस श्लोक में पिछले श्लोक के भाव को ही आगे बढ़ाते हुए गुरु नानक देव जी कहते हैं: सतयुग के प्रतीक सामवेद के अनुसार श्वेतांबर स्वामी (श्वेतकेतु) कहते हैं कि सत्य पर सदा दृढ़ रहो। सभी सत्य प्रभु में समा जाओ। त्रेतायुग के प्रतीक ऋग्वेद के अनुसार राम नाम सब देवताओं में बलवान् है। उस राम के नाम का सुमिरन करने से सब पापों का नाश हो जाता है और मोक्ष प्राप्त हो जाता है।

द्वापर के प्रतीक यजुर्वेद के कान्ह श्रीकृष्ण का वर्णन है, जो यादव वंश में हुए और जिन्होंने अपने छल-बल से चन्द्रावली को मोह लिया। वे अपनी गोपी सत्यभामा के लिये स्वर्ग से पारिजात वृक्ष को ले आए। आपने वृंदावन में अपनी लीला रचाई।

कलियगु के प्रतीक अथर्ववेद के अनुसार मुसलमानों का राज्य हो गया और लोग परमात्मा को अल्लाह के नाम से पुकारने लगे। नीले वस्त्र पहनने वाले तुर्क और पठानों का प्रभाव हो गया।

गुरु साहिब कहते हैं: अपने-अपने नुक़्ते से चारों वेद सत्य सिद्ध हुए हैं। जो लोग उन्हें भली-भाँति पढ़ते और गहराई से विचार करते हैं, उन्हें यह सुंदर विचार मिलता है कि जो व्यक्ति प्रेमपूर्वक प्रभु की भक्ति करता है और मन में नम्रता धारण करता हुआ अपने-आपको नीच से नीच, दासों का दास समझता है, वह मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

❖ ***साम कहै सेतंबर सुआमी सच मह आछै साच रहे॥***
सभ को सच समावै॥

सामवेद में सत्य पर दृढ़ रहते हुए प्रभु की भक्ति द्वारा उसमें समा जाने का उपदेश दिया गया है।

रिग कहै रहिआ भरपूर॥ राम नाम देवा मह सूर॥
नाए लइऐ पराछत जाहे॥ नानक तउ मोखंतर पाहे॥

ऋग्वेद में प्रभु के सर्वव्यापक होने का वर्णन किया गया है और उसमें प्रभु के नाम को मुक्ति प्राप्त करने का सच्चा साधन स्वीकार किया गया है।

जुज मह जोर छली चंद्रावल कान्ह क्रिसन जादम भइआ॥
पारजात गोपी लै आइआ बिंद्राबन मह रंग कीआ॥
यजुर्वेद में श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन है।
कल मह बेद अथरबण हूआ नाउ खुदाई अलह भइआ॥
नील बसत्र ले कपड़े पहिरे तुरक पठाणी अमल कीआ॥

गुरु साहिब फ़रमाते हैं: अथर्ववेद में कलियुग का वर्णन है। लोगों ने परमात्मा को, अल्लाह-अल्लाह, ख़ुदा-ख़ुदा कहना शुरू कर दिया। उन्होंने समय के हाकिमों, तुर्कों और पठानों की नक़ल करते हुए नीले वस्त्र पहनने शुरू कर दिए। गुरु साहिब द्वारा अथर्ववेद के प्रसंग में 'अल्लाह' और 'ख़ुदा' शब्दों के प्रयोग पर आश्चर्य होता है। विद्वानों ने अकबर के ज़माने में लिखी गई मुंतख़िबुल तारीख़ के संदर्भ से लिखा है कि अथर्ववेद में बार-बार 'ला' पद का प्रयोग किया गया है, जिसे अल्लाह आदि से मिलता-जुलता माना गया है। यह विचार प्राचीन समय से चला आ रहा है कि अथर्ववेद के कई अंश सामयिक धर्म ग्रंथों से मिलते जुलते हैं।

चारे वेद होए सचिआर॥ पड़ह गुणह तिन्ह चार वीचार॥
भाउ भगति कर नीच सदाए॥ तउ नानक मोखंतर पाए॥

गुरु साहिब समझाते हैं कि चारों वेदों में चारों युगों के हालात के अनुसार अपने-अपने ढंग से दिया गया उपदेश सही प्रमाणित हुआ है। आप कहते हैं: वेदों ने तो जीव का सही मार्गदर्शन करने का यत्न किया है, परंतु वास्तविक लाभ तभी है यदि जीव उन पर विचार करके जीवन को उनमें से प्राप्त उपदेशानुसार ढालने का प्रयत्न करे, प्रेमपूर्वक प्रभु के नाम की आराधना में लीन हो और निर्मल आचरण अपनाकर नम्रतापूर्वक इस संसार में विचरण करे। प्रभु की भक्ति करते हुए और गुणों को धारण करते हुए अपने-आपको नीच, निर्गुण कहना ही वेदों के उपदेश पर अमल करने का वास्तविक चिन्ह है।

पउड़ी

सतिगुर विटहो वारिआ जित मिलिऐ खसम समालिआ॥
जिन कर उपदेस गिआन अंजन दीआ इन्ही नेत्री जगत निहालिआ॥
खसम छोड दूजै लगे डुबे से वणजारिआ॥
सतिगुर है बोहिथा विरलै किनै वीचारिआ॥
कर किरपा पार उतारिआ॥१३॥

विटहो=पर; **वारिआ**=क़ुर्बान जाऊँ; **अंजन**=सुरमा; **वणजारिआ**=व्यापारी; **बोहिथा** =जहाज़।

सरलार्थ: गुरु नानक देव जी कहते हैं: सतगुरु पर क़ुर्बान जाऊँ, जिसके मिलने से मन में मालिक की याद पैदा हुई। सतगुरु ने ज्ञानरूपी सुरमा आँखों में डाला, जिससे संसार का वास्तविक स्वरूप नज़र आया है। जो लोग मनुष्य जन्म का सुनहरी अवसर प्राप्त करके, मालिक को छोड़कर सांसारिक पदार्थों के मोह में फँसे हुए हैं, वे भवसागर में ही गोते खाते रहते हैं। ऐसे भाग्यशाली जीव विरले ही हैं जो इस विचार या निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सतगुरु ही भवसागर से पार करनेवाला जहाज़ है। जो भाग्यशाली जीव सतगुरु की शरण में आ गए, सतगुरु ने कृपा करके उन्हें भवसागर से पार कर दिया।

◆ ***सतिगुर विटहो वारिआ जित मिलिऐ खसम समालिआ॥***
जिन कर उपदेस गिआन अंजन दीआ इन्ही नेत्री जगत निहालिआ॥

गुरु साहिब सतगुरु पर बलिहारी जाने के दो कारण बयान करते हैं। पहला यह कि सतगुरु के मिलाप द्वारा प्रभु से मिलाप हो गया। दूसरा यह कि सतगुरु के मिलाप से अज्ञानता का अंधकार दूर हो गया और हृदय ज्ञान के प्रकाश से भर गया। गुरु अमरदास जी की वाणी है: '**कहै नानक** एह नेत्र अंध से सतिगुर मिलिऐ दिब द्रिसट होई॥'[92] जब तक सतगुरु नहीं मिला था, आँखें अंधी थीं, क्योंकि सर्वव्यापक होने के बावजूद प्रभु कहीं दिखाई ही नहीं देता था। जब सतगुरु ने आत्मिक नेत्र में ज्ञान का अंजन डाला, तो सृष्टि की वास्तविकता का पता चला और प्रभु भी सर्वव्यापक दिखाई देने लगा। पहले अज्ञानतावश संसार केवल सांसारिक तृष्णाओं की पूर्ति का साधन प्रतीत होता था, लेकिन सतगुरु के ज्ञान द्वारा यह प्रभु प्राप्ति के साधन के रूप में दिखाई देने लगा।

गुरु अमरदास जी की वाणी है:

गुर गिआन अंजन सच नेत्री पाइआ॥
अंतर चानण अगिआन अंधेर गवाइआ॥
जोती जोत मिली मन मानिआ हर दर सोभा पावणिआ॥[93]

जब सतगुरु ज्ञान का अंजन आँखों में डाल देता है, तो आत्मा के सामने फैला अज्ञानता का अँधेरा दूर हो जाता है और आत्मा की ज्योति उस परम ज्योति में समा जाती है।

खसम छोड दूजै लगे डुबे से वणजारिआ॥
सतिगुर है बोहिथा विरलै किनै वीचारिआ॥

जो लोग सतगुरु के उपदेशानुसार प्रभु की भक्ति नहीं करते, वे सदा भवसागर में गोते खाते रहते हैं। भवसागर से पार जाने का साधन सतगुरु है। गुरु नानक देव जी की वाणी है:

मसतक भार कलर सिर भारा॥ किउ कर भवजल लंघस पारा॥
सतिगुर बोहिथ आद जुगादी राम नाम निसतारा हे॥[94]

जब से सृष्टि की रचना हुई है तभी से संत सतगुरुरूपी जहाज़ भवसागर में गोते खा रहे जीवों का नाम द्वारा उद्धार करता आ रहा है। गुरु साहिब ने यही भाव इस प्रकार भी प्रकट किया है:

बाबा जग फाथा महा जाल॥ गुर परसादी उबरे सचा नाम समाल॥
सतिगुरू है बोहिथा सबद लंघावणहार॥[95]

कर किरपा पार उतारिआ॥—सतगुरु किसी स्वार्थ की भावना से नहीं, बल्कि अपनी दया से जीवों का भवसागर से उद्धार करते हैं। गुरु रामदास जी की वाणी है:

सतिगुर साधसंगत है नीकी मिल संगत राम रवीजै॥
अंतर रतन जवेहर माणक गुर किरपा ते लीजै॥
मेरा ठाकुर वडा वडा है सुआमी हम किउ कर मिलह मिलीजै॥
नानक मेल मिलाए गुर पूरा जन कउ पूरन दीजै॥[96]

सतगुरु दया मेहर करके जीव को प्रभु के साथ मिलाकर उसका रूप ही बना देते हैं।

सलोक और पउड़ी १४

सलोक महला १

सिंमल रुख सराइरा अत दीरघ अत मुच॥
ओए जि आवह आस कर जाहे निरासे कित॥
फल फिके फुल बकबके कंम न आवह पत॥
मिठत नीवी नानका गुण चंगिआईआ तत॥
सभ को निवै आप कउ पर कउ निवै न कोए॥

धर ताराजू तोलीऐ निवै सो गउरा होए॥
अपराधी दूणा निवै जो हंता मिरगाहे॥
सीस निवाइऐ किआ थीऐ जा रिदै कुसुधे जाहे॥१॥

सराइरा=सीधा; **ओए**=वे (पक्षी); **जाहे**=जाएँ; **नीवी**=नम्रता; **तत**=सार, सबसे बड़ा गुण; **गउरा**=भारी; **हंता**=मारनेवाला; **रिदै**=हृदय; **कुसुधे जाहे**=अवगुणों से भरा हुआ।

सरलार्थ: इस श्लोक में गुरु साहिब नम्रता की महिमा करते हुए कहते हैं: सेमल का वृक्ष सीधा, ऊँचा, लंबा और मोटा होता है, परंतु जो पक्षी फल की आशा रखकर उसके पास पहुँचते हैं, उन्हें समझ में नहीं आता कि वे निराश होकर कहाँ जाएँ। सेमल के फल फीके और स्वादहीन होते हैं तथा उसके पत्ते भी किसी काम नहीं आते। गुरु साहिब कहते हैं कि मधुरता और नम्रता सभी गुणों और अच्छाइयों का सार तत्त्व है। अपने स्वार्थ के लिए तो सभी विनम्र हो जाते हैं और दूसरों के आगे झुकते हैं, परंतु ऐसे लोग बहुत कम हैं, जो दूसरों की ख़ातिर झुकते हैं। आप उदाहरण देते हैं कि जिस तरह से तराज़ू का भारी पलड़ा झुकता है, उसी तरह कोई व्यक्ति जितना गुणवान होता है, उतना अधिक नम्र होता है। गुरु साहिब सावधान करते हैं कि अपने अवगुणों को छिपाने के लिए नम्रता धारण कर लेना उसी तरह है, जिस तरह हिरण को मारने के लिए तीर चलाते वक़्त शिकारी झुक जाता है। यदि हृदय खोट से भरा हुआ हो, तो सिर झुकाने का या नम्रता का दिखावा करने का कोई लाभ नहीं।

❖ गुरु साहिब मीठा बोलने और नम्रता धारण करने को सभी गुणों और अच्छाइयों का सार कह रहे हैं। आप कहते हैं कि एक तरफ़ वे लोग हैं जो सेमल की तरह बड़े होने का दिखावा करते हैं, परंतु वे पारमार्थी गुणों से वंचित होते हैं। दूसरी तरफ़ वे संत, गुरुमुख और मालिक के भक्त हैं, जो गुणों से भरपूर होने के बावजूद नम्रता, मिठास और प्रेम की मूरत होते हैं। वास्तविक बड़ाई पूरी तरह समर्थ होने के बावजूद मधुर बोलने और दूसरों के लिए झुकने में है।

गुरु साहिब दूसरा उपदेश यह देते हैं कि वास्तविक बड़ाई स्वार्थ के स्थान पर दूसरों का भला करने के लिए नम्रता धारण करने में है। गुरु अर्जुन देव जी के अनुसार मीठा बोलना वह दैविक गुण है, जिसके द्वारा प्रभु के दर्शन होते हैं:

मिठ बोलड़ा जी हर सजण सुआमी मोरा॥
हउ संमल थकी जी ओह कदे न बोलै कउरा॥[97]

गुरु अमरदास जी की वाणी है:

गुरमुख सदा सोहागणी पिर राखिआ उर धार॥
मिठा बोलह निव चलह सेजै रवै भतार॥
सोभावंती सोहागणी जिन गुर का हेत अपार॥[98]

सतगुरु और प्रभु के प्रेम के रंग में रँगी भाग्यशाली सुहागिनें सदैव मीठा बोलती हैं और नम्रतापूर्वक बर्ताव करती हैं।

इस संदर्भ में गुरु अर्जुन देव जी ने एक सुंदर उदाहरण दिया है। आप कहते हैं:

सुखी बसै मसकीनीआ आप निवार तले॥
बडे बडे अहंकारीआ नानक गरब गले॥[99]

मसकीनीआ एक पहलवान था, जो परोपकार की ख़ातिर दंगल में स्वयं हारकर दूसरे को इनाम दिलवा देता था।* गुरु साहिब कहते हैं कि जो लोग सामर्थ्य होने के बावजूद दूसरों की ख़ातिर झुक जाते हैं, उन्हें सच्चा सुख मिलता है, जबकि अपने गुणों का अहंकार करनेवाले अधोगति को प्राप्त होते हैं।

गुरु साहिब अंतिम दो पंक्तियों में सावधान करते हैं कि नम्रता सच्ची होनी चाहिए, दिखावे की नहीं। अपराधी अपना अपराध छिपाने के लिए बनावटी नम्रता का दिखावा करता है। शिकारी शिकार के लिए दुगुना झुककर तीर चलाता है। उसी प्रकार यदि मन में पाप है, तो बाहर से सिर झुकाने का कोई लाभ नहीं।

---

* *श्री गुरु ग्रन्थ साहिब कोष*, पृ. 516

महला १

पड़ पुसतक संधिआ बादं ॥ सिल पूजस बगुल समाधं ॥
मुख झूठ बिभूखण सारं ॥ त्रैपाल तिहाल बिचारं ॥
गल माला तिलक लिलाटं ॥ दुए धोती बसत्र कपाटं ॥
जे जाणस ब्रहमं करमं ॥ सभ फोकट निसचउ करमं ॥
कहो नानक निहचउ धिआवै ॥ विण सतिगुर वाट न पावै ॥ २ ॥

संधिआ=पूजा-भक्ति; **बादं**=चर्चा; **सिल**=पत्थर; **बगुल समाधं**=बगुले के समान समाधि; **बिभूखण**=सजाना; **त्रैपाल**=तीन पंक्तियों वाला गायत्री मंत्र; **तिहाल**=तीनों वक़्त; **कपाटं**=सिर पर; **ब्रहमं करमं**=ब्रह्म के साथ मिलानेवाले सच्चे कर्म।

सरलार्थ: गुरु नानक देव जी कहते हैं कि फोकट कर्मकांडों में ग्रस्त पंडित धर्म ग्रंथों का पाठ करता है। वह सुबह, दोपहर और शाम के समय संध्या यानी पूजा-पाठ करता है और लोगों के साथ सदा वाद-विवाद करता रहता है। वह मूर्तियों की पूजा करके बगुले भक्त की तरह समाधि लगाता है। वह दिखावा तो ध्यान मग्न होने का करता है, परंतु उसके मन में झूठ यानी कुछ और ही लालसा होती है। वह जिस सार तत्त्व का वर्णन करता है, वह नकली गहनों की भाँति चमकता है। उसकी बातें बाहर से सुंदर प्रतीत होती हैं, परंतु उन्हें सच्चे निजी ज्ञान का आधार प्राप्त नहीं होता। वे सुबह, दोपहर, शाम तीनों समय, तीन पंक्तियों वाले गायत्री मंत्र का जाप करता है। उसने माथे पर तिलक लगाया होता है और गले में माला पहनी होती है। वह दो धोतियाँ पास रखता है और पूजा करते समय सिर पर कपड़ा रखता है।

गुरु साहिब फ़रमाते हैं: यदि पंडित को ब्रह्म के साथ मिलानेवाले सच्चे कर्म का पता होता, तो उसे अवश्य इस बात का बोध हो जाता कि जिन कर्मों में वह ग्रस्त है, सब फोकट या निरर्थक हैं। गुरु साहिब उपदेश देते हैं कि सतगुरु के बिना प्रभु का ध्यान करने से सच्चे साधन और मार्ग की सूझ नहीं हो सकती। इसलिए पक्का विश्वास धारण करके प्रभु का ध्यान करना चाहिए।

❖ इस श्लोक की पहली चार पंक्तियों में भक्ति के बाहरी साधनों का उल्लेख किया गया है और अंतिम पंक्ति में भक्ति के सच्चे साधन पर प्रकाश डाला गया है। गुरु साहिब समझा रहे हैं कि जिस व्यक्ति ने स्वयं प्रभु के साथ मिलाप नहीं किया, वह केवल बाहरी ज्ञान के आधार पर दूसरों को प्रभु की भक्ति के सच्चे मार्ग और साधन का उपदेश नहीं दे सकता। प्रभु के साथ मिलाप कर चुके पूरे गुरु के उपदेशानुसार पूरी श्रद्धा से प्रभु की भक्ति करने पर ही उसके साथ मिलाप किया जा सकता है।

पउड़ी

कपड़ रूप सुहावणा छड दुनीआ अंदर जावणा ॥
मंदा चंगा आपणा आपे ही कीता पावणा ॥
हुकम कीए मन भावदे राह भीड़ै अगै जावणा ॥
नंगा दोजक चालिआ ता दिसै खरा डरावणा ॥
कर अउगण पछोतावणा ॥१४॥

दोजक=नरक; **खरा**=बहुत।

सरलार्थ: गुरु नानक देव जी सावधान करते हैं: इस शरीररूपी सुंदर कपड़े को संसार में ही छोड़कर जाना पड़ता है। अंत समय इसके साथ इसके कर्म जाते हैं। आगे जाकर इसे अपने अच्छे-बुरे कर्मों का फल स्वयं ही भुगतना पड़ता है। इसने संसार में जो मनचाहे हुक्म चलाये हैं, उनका फल भोगने के लिए अंत समय तंग और दु:खदायी मार्ग में से गुज़रना पड़ता है। जब इसके कर्मों का असली चित्र प्रस्तुत करके नरकों की राह पर धकेला जाता है तो इसे अपना रूप बहुत भयानक दिखाई देता है। इसने संसार में जो पाप किए हैं, उनके लिए पश्चात्ताप करना पड़ता है।

❖ गुरु साहिब सावधान करते हैं कि जीव जिस शरीर के मोह और सुख की ख़ातिर मन के कहे अनुसार पाप करता है, वह शरीर अंत समय साथ नहीं जाता।

शरीर तो पीछे रह जाता है, परंतु जीवात्मा को धर्मराज के दरबार में जाकर अपने किए हुए कर्मों का हिसाब देना पड़ता है। इसे किए हुए कर्मों के कारण तंग रास्ते में से गुज़रना पड़ता है और नरकों की आग में जलना पड़ता है। वहाँ इसकी बहुत दुर्दशा होती है और यह पश्चात्ताप भी करता है, परंतु उसका कोई लाभ नहीं होता। जीव का यह समझना कि उसके कर्मों को कोई नहीं देख रहा है और उसे इन कर्मों की कोई सज़ा नहीं भुगतनी पड़ेगी, उसकी भारी अज्ञानता है। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

दिन रात कमाइअड़ो सो आइओ माथै॥
जिस पास लुकाइदड़ो सो वेखी साथै॥
संग देखै करणहारा काए पाप कमाईऐ॥
सुक्रित कीजै नाम लीजै नरक मूल न जाईऐ॥[100]

सलोक और पउड़ी १५

सलोक महला १

दइआ कपाह संतोख सूत जत गंढी सत वट॥
एह जनेऊ जीअ का हई त पाडे घत॥
ना एह तुटै न मल लगै ना एह जलै न जाए॥
धंन सो माणस नानका जो गल चले पाए॥
चउकड़ मुल अणाइआ बह चउकै पाइआ॥
सिखा कंन चड़ाईआ गुर ब्राहमण थिआ॥
ओह मुआ ओह झड़ पइआ वेतगा गइआ॥१॥

कपाह=कपास, रूई; **जत**=इंद्रियों को वश में करना; **सत**=सदाचार; **वट**=मरोड़ना, बाट देना; **जीअ का**=आत्मा का; **घत**=डाल दे; **चउकड़**=चार कौड़ी मूल्य का; **अणाइआ**=मँगवाया; **चउकै**=चौका, आँगन; **सिखा**=शिक्षा, दीक्षा, मंत्र; **कंन**=कान में फूँका; **थिआ**=हो गया; **वेतगा**=जनेऊ के बिना।

सरलार्थ: गुरु नानक देव जी समझाते हैं कि सूत के धागे से बने जनेऊ का संबंध शरीर के साथ है और यह आत्मा के कल्याण का साधन नहीं है।

आप कहते हैं: यदि जनेऊ पहनना ही है तो दया की कपास होनी चाहिए, संतोष का सूत होना चाहिए, उसे जत भाव निर्मल आचरण की गाँठें डालनी चाहिएँ और सत्य का बल चढ़ाना चाहिए। हे पांडे! यदि तेरे पास ऐसा जनेऊ है तो हमारी आत्मा को पहना दे। यह जनेऊ न टूटता है, न मलिन होता है, इसे न अग्नि जला सकती है और न ही यह कहीं लुप्त होता है। धन्य हैं वे लोग जिन्होंने ऐसा जनेऊ अपने गले में पहना हुआ है।

❖ आप इस आत्मिक जनेऊ की तुलना में बाहरी जनेऊ के बारे में कहते हैं: यह जनेऊ चार कौड़ी के मूल्य में ख़रीदकर चौके में बैठकर गले में पहना जाता है। ब्राह्मण गुरु बनकर बैठ जाता है और जिस के गले में जनेऊ पहनाता है, उसके कान में शिक्षा देता है। जब जनेऊ पहननेवाला मर जाता है तो जनेऊ शरीर के साथ अग्नि में जलकर स्वाहा हो जाता है और जीव जनेऊ के बिना ही परलोक में पहुँचता है।

महला १

लख चोरीआ लख जारीआ लख कूड़ीआ लख गाल॥
लख ठगीआ पहिनामीआ रात दिनस जीअ नाल॥
तग कपाहो कतीऐ बाम्हण वटे आए॥
कुह बकरा रिंन्ह खाइआ सभ को आखै पाए॥
होए पुराणा सुटीऐ भी फिर पाईऐ होर॥
नानक तग न तुटई जे तग होवै जोर ॥२॥

जारीआ=कुकर्म, व्यभिचार; **गाल**=गालियाँ; **पहिनामीआ**=छिपाकर किए गए बुरे कर्म; **तग**=धागा; **कुह**=कष्ट देकर मारना; **रिंन्ह**=पकाकर।

सरलार्थ: पिछले श्लोक के भाव को आगे बढ़ाते हुए गुरु नानक देव जी कहते हैं: जिस व्यक्ति के गले में जनेऊ पहनाया गया है, वह दिन रात लाखों चोरियाँ और बुरे कर्म करता है। वह लाखों बुरे विचार मन में उठाता है, लाखों ठगियाँ और बेईमानियाँ करता है। ये सब उसके साथ रहती हैं। जनेऊ कपास से काता जाता है। ब्राह्मण आकर उसे बट देता है।

उधर बकरे का मांस पकाया जाता है। लोग बकरे का मांस खाकर कहते हैं: पहन लो, पहन लो। इस तरह से जनेऊ पहनाया जाता है। जब वह पुराना हो जाए तो नया जनेऊ पहन लिया जाता है। यदि उस जनेऊ में शक्ति होती तो वह टूट नहीं सकता था।

❖ अन्य धार्मिक रस्मों की तरह जनेऊ पहनने का वास्तविक उद्देश्य, जीव को संयम में रहते हुए पारमार्थिक रहनी को अपनाने का उपदेश देना था। समय के अंतराल के साथ यह भाव समाप्त हो गया। गुरु साहिब सावधान करते हैं कि न तो जनेऊ पहननेवाले की रहनी निर्मल है और न ही जनेऊ पहनानेवाले ब्राह्मण की। फिर ऐसी रस्म का क्या फ़ायदा? गुरु साहिब सावधान करते हैं कि ब्राह्मण दूसरे व्यक्ति के गले में जनेऊ भी पहना देता है, वह कानों में मंत्र भी फूँक देता है, उपदेश भी दे देता है, परंतु इससे जनेऊ पहननेवाले के न तो विचार बदलते हैं, न ही रहनी। इन दोनों श्लोकों को मिलाकर यह भाव सामने आता है कि आत्मा को पहनाया गया शुभ गुणों का जनेऊ स्थायी और चिरकालीन होता है, जबकि बाहरी जनेऊ कच्चा और सामयिक होता है। पारमार्थिक गुणों का जनेऊ मालिक की दरगाह तक साथ निभाता है, लेकिन रस्मी जनेऊ अंत समय साथ नहीं जाता।

गुरु साहिब पीछे भी कुछ श्लोकों में जनेऊ की रस्म का वर्णन कर आए हैं। 'जनेऊ' भेषों और चिन्हों का प्रतीक है। गुरु साहिब सावधान करते हैं कि हर प्रकार के भेषों और धार्मिक चिन्हों का संबंध शरीर के साथ है। शरीर अंत समय अग्नि को भेंट कर दिया जाता है या मिट्टी में दबा दिया जाता है। सारे धार्मिक भेष और चिन्ह भी शरीर के साथ ही नष्ट हो जाते हैं। उनमें से कोई भी जीव के साथ नहीं जा सकता। गुरु अर्जुन देव जी का कथन है:

आठ पहर हर नाम सिमरहो चलै तैरै साथे॥
भज साधसंगत सदा नानक मिटह दोख कमाते॥[101]

अंतिम समय साथ जानेवाली वस्तु केवल प्रभु का नाम है। नाम का अभ्यास करने से संचित कर्म भी नष्ट हो जाते हैं और प्रभु के साथ मिलाप का

सौभाग्य प्राप्त होता है। इसलिए साधु की संगति द्वारा लिव सदैव नाम के साथ जोड़कर रखनी चाहिए।

महला १

नाए मंनिऐ पत ऊपजै सालाही सच सूत॥
दरगह अंदर पाईऐ तग न तूटस पूत॥ ३॥

नाए मंनिऐ=नाम के अभ्यास से; **पत**=शोभा।

सरलार्थ: गुरु साहिब आत्मिक जनेऊ की तरफ़ संकेत करते हुए कहते हैं: मालिक की दरगाह में सच्ची शोभा दिलानेवाला जनेऊ, मालिक के नाम के अभ्यास से प्रभु की महिमा के सच्चे सूत से बनता है। यह पवित्र जनेऊ कभी नहीं टूटता। यह अंत समय तक साथ निभाता है और इसको पहननेवाला जीव प्रभु की दरगाह में स्वीकार हो जाता है।

❖ गुरु साहिब पिछले दोनों श्लोकों के भाव को पूर्णता प्रदान करते हुए कहते हैं कि परमार्थी के उद्यम का आरंभ शुभ गुणों से होता है और इसका शिखर नाम का अभ्यास है। प्रभु प्राप्ति का मार्ग निर्मल आचरण की गलियों में से होकर जाता है, परंतु मंज़िल पर पहुँचानेवाला साधन प्रभु का नाम है।

महला १

तग न इंद्री तग न नारी॥ भलके थुक पवै नित दाड़ी॥
तग न पैरी तग न हथी॥ तग न जिहवा तग न अखी॥
वेतगा आपे वतै॥ वट धागे अवरा घतै॥
लै भाड़ करे वीआह॥ कढ कागल दसे राह॥
सुण वेखहो लोका एह विडाण॥ मन अंधा नाउ सुजाण॥ ४॥

भलके=प्रतिदिन; **पैरी**=पैरों को; **हथी**=हाथों को; **वेतगा**=जनेऊ के बिना भाव आत्म संयम के बिना; **वतै**=घूम रहा है; **भाड़**=किराया, दक्षिणा; **कागल**=काग़ज़, पत्री; **राह**=रास्ता; **विडाण**=आश्चर्यजनक तमाशा; **अंधा**=अज्ञानी; **सुजाण**=ज्ञानी।

सरलार्थ: गुरु नानक देव जी कहते हैं: जो ब्राह्मण दूसरों के गले में जनेऊ डालता है उसने ऐंद्रिय विकारों को तो जनेऊ पहनाया नहीं और न ही मन को काम आदि विकारों की तरफ़ जाने से रोका, जिसके कारण प्रतिदिन उसे अपमानित होना पड़ता है। उसने न हाथों और पैरों को बुरे कर्मों से रोकने का जनेऊ पहना है, न जिह्वा को निंदा के बोल बोलने से वर्जित किया है और न ही आँखों को बुरी दृष्टि से रोका है। उसने अपने-आपको किसी सदाचार और आत्मिक संयम में नहीं ढाला, परंतु लोगों के गले में जनेऊ पहनाता है। वह शादी की रस्म करवाता है तो दक्षिणा लेकर करवाता है। यदि कोई सफ़र के बारे में पूछता है तो पत्री निकालकर बताता है कि अमुक दिशा में जाना है और अमुक दिशा में नहीं जाना। हे लोगो सुनो और देखो! कितनी भारी विडंबना है कि जो स्वयं मन का अंधा है, वह ज्ञानी कहलवाता है!

❖ ***तग न इंद्री तग न नारी॥ भलके थुक पवै नित दाड़ी॥***
तग न पैरी तग न हथी॥ तग न जिहवा तग न अखी॥
वेतगा आपे वतै॥ वट धागे अवरा घतै॥

गुरु साहिब दु:ख प्रकट करते हैं कि धार्मिक अगुवा स्वयं तो किसी संयम और मर्यादा का पालन नहीं करते, परंतु दूसरों को यह उपदेश देते हैं कि निर्मल आचरण धारण करते हुए प्रभु की भक्ति करनी चाहिए। ऐसे तथाकथित धर्मात्माओं के उपदेश का लोगों पर क्या प्रभाव पड़ सकता है?

लै भाड़ करे वीआह॥ कढ कागल दसे राह॥
सुण वेखहो लोका एह विडाण॥ मन अंधा नाउ सुजाण॥

गुरु साहिब कहते हैं कि सदाचार और आत्मिक करनी से वंचित पुरोहितों ने धर्म को जीविका का साधन बनाया हुआ है। पुरोहित पैसे लेकर विवाह करवाता है और कुंडलियाँ देखकर लोगों को ग्रह दशा के बारे में बताता है। गुरु साहिब कहते हैं: हे लोगो! देखो कितना भारी आश्चर्य और घोर अनर्थ है कि मन के अंधे और अधर्मी को धार्मिक और ज्ञानी समझा जा रहा है!

गुरु साहिब बार-बार यह भाव दृढ़ करवा रहे हैं कि जब तक धार्मिक रस्में निभानेवालों की करनी निर्मल नहीं होती, तब तक उन रस्मों को पूरी करनेवालों को दरगाह में सम्मान नहीं मिलता है और न ही करवानेवालों को। उन्हें अपने किए हुए कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ेगा। गुरु साहिब ने सातवीं पउड़ी में 'कर सुक्रित धरम कमाइआ॥' का उपदेश दिया है। 'सुक्रित' हक़-हलाल की कमाई और नाम का अभ्यास दोनों का भाव दृढ़ करवाने वाला पद है।

गुरु नानक देव जी चेतावनी देते हैं:

ध्रिग तिना का जीविआ जि लिख लिख वेचह नाउ॥
खेती जिन की उजड़ै खलवाड़े किआ थाउ॥[102]

आप कहते हैं कि जो लोग प्रभु के नाम को किसी तरह से रोज़गार का साधन बना लेते हैं, वे यह समझ लें कि वे जो फसल बो रहे हैं, उसे उजाड़ते भी चले जा रहे हैं। जब अंत समय हिसाब होगा तो उन्हें अच्छा फल नहीं मिलेगा, कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ेगा। जब तक हक़-हलाल की कमाई करते हुए नाम का अभ्यास नहीं करते, मालिक के दरबार में सम्मान नहीं मिल सकता। कबीर साहिब का कथन है:

बूडा बंस कबीर का उपजिओ पूत कमाल॥
हर का सिमरन छाड कै घर ले आया माल॥[103]

आप कहते हैं: मेरे परिवार का सर्वनाश हो गया है। मेरा पुत्र कमाल, हरि के सुमिरन के स्थान पर धन घर ले आया है।

दक्षिणा लेकर धार्मिक रस्में निभाने का रिवाज केवल गुरु साहिब के समय तक ही सीमित नहीं था। आज भी अलग-अलग धर्मों के पुरोहित, मौलवी आदि जन्म-मरण, विवाह इत्यादि की रस्में करके धन इकट्ठा कर रहे हैं। धर्म स्थानों पर धर्म ग्रंथों के किए-कराए पाठ मिल जाते हैं। कई लोग तीर्थ यात्रा या हज का फल बेच देते हैं। जिस धर्म में धन-संपत्ति के लोभी पुरोहित प्रभावशाली हो जाते हैं, वे अपना तो नाश करते हैं, उस धर्म की जड़ें भी खोखली कर देते हैं।

पउड़ी

साहिब होए दइआल किरपा करे ता साई कार कराइसी ॥
सो सेवक सेवा करे जिस नो हुकम मनाइसी ॥
हुकम मंनिऐ होवै परवाण ता खसमै का महल पाइसी ॥
खसमै भावै सो करे मनहो चिंदिआ सो फल पाइसी ॥
ता दरगह पैधा जाइसी ॥१५॥

मनह चिंदिआ=मनचाहा।

सरलार्थ: गुरु नानक देव जी फ़रमाते हैं: जिस पर वह मालिक दयाल होकर कृपा करता है, वह उस जीव से ऐसे ही कार्य करवाएगा जो उसे भाते हैं। वह मालिक जिससे अपना हुक्म मनवाएगा, वही सेवक उसकी सच्ची भक्ति में लगेगा। जो सेवक मालिक का हुक्म मानेगा, वह उसके दरबार में स्वीकार हो जाएगा और मालिक के महल में पहुँच जाएगा। जो सेवक कुल मालिक को पसंद आनेवाले कर्म करेगा और ऐसी भक्ति में लगेगा, जो मालिक को पसंद है, उसे ही मनचाहे फल की प्राप्ति होगी। वह मालिक के दरबार में सम्मान से पहुँचेगा।

❖ इस पउड़ी में गुरु साहिब परमार्थ के इस रहस्य पर प्रकाश डाल रहे हैं कि प्रभु की सच्ची सेवा भक्ति द्वारा केवल वही सेवक प्रभु के साथ मिलाप कर सकता है, जो उसकी दया से उसके हुक्म को पहचान लेता है। प्रश्न उत्पन्न होता है कि जीव प्रभु के हुक्म की पहचान कैसे कर सकता है? गुरु साहिब ने छठी पउड़ी में वर्णन किया है: '*सतिगुर विच आप रखिओन कर परगट आख सुणाइआ ॥*' सतगुरु उस निराकार का दृश्यमान साकार रूप है, इसलिए उसके हुक्म या उपदेश का पालन प्रभु के हुक्म का पालन है।

छठी पउड़ी में संकलित एक श्लोक में गुरु अंगद देव जी फ़रमा रहे हैं: '*हउमै एहो हुकम है पइऐ किरत फिराहे ॥ हउमै दीरघ रोग है दारू भी इस माहे ॥ किरपा करे जे आपणी ता गुर का सबद कमाहे ॥*' मनमत का प्रसार भी प्रभु के हुक्म का खेल है। इस खेल से मुक्ति तभी होगी जब सतगुरु के उपदेशानुसार नाम का अभ्यास करेंगे। गुरु नानक देव जी की वाणी है:

सतसंगत कैसी जाणीऐ ॥ जिथै एको नाम वखाणीऐ ॥
एको नाम हुकम है नानक सतिगुर दीआ बुझाए जीउ ॥[104]

गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि ऐसे पूर्ण पुरुष की संगति करनी चाहिए जो सदैव प्रभु के नाम की महिमा करते हैं। सतगुरु के उपदेशानुसार नाम का अभ्यास करना ही प्रभु के हुक्म का पालन करना है। गुरु साहिब कहते हैं: '*हुकम जिना नो मनाइआ ॥ तिन अंतर सबद वसाइआ ॥*'[105] प्रभु जिनसे अपना हुक्म मनवाना चाहता है, उनके अंदर सतगुरु के ज़रिये अपना हुक्म यानी नाम बसा देता है। गुरु नानक देव जी एक अन्य प्रसंग में कहते हैं: '*हुकम पछाणै सो हर गुण वखाणै ॥ गुर कै सबद नाम नीसाणै ॥*'[106] हरि के हुक्म की पहचान करने का अर्थ हरि की भक्ति करना है और नाम के साथ लिव जोड़ना ही इस भक्ति का वास्तविक प्रमाण है।

सलोक और पउड़ी १६

सलोक महला १

गऊ बिराहमण कउ कर लावह गोबर तरण न जाई ॥
धोती टिका तै जपमाली धान मलेछां खाई ॥
अंतर पूजा पड़ह कतेबा संजम तुरका भाई ॥
छोडीले पाखंडा ॥ नाम लइऐ जाहे तरंदा ॥१॥

कर=महसूल, टैक्स, कर; **लावह**=लगाते हो; **गोबर**=गाय के गोबर से लेप करना; **जपमाली**=माला; **धान**=अन्न आदि; **मलेछां**=मुसलमानों को; **कतेबा**=इस्लामी धर्म ग्रंथ; **संजम**=रहनी, व्यवहार; **तुरका**=मुसलमानोंवाली; **पाखंडा**=पाखंडों को।

सरलार्थ: गुरु नानक देव जी पीछे ब्राह्मणों की करनी का उल्लेख कर आए हैं। अब आप मुसलमानों के अधीन नौकरी करनेवाले हिंदू लोगों की अवस्था का वर्णन करते हुए कहते हैं: भले लोगो! तुम ब्राह्मणों को पूजनीय मानते हो, परंतु मुसलमान हाकिमों के हुक्म से उन पर महसूल लगाते हो। तुम गाय को माता कहते हो, परंतु गाय पर भी टैक्स लगाते हो।

तुम एक तरफ़ गाय पर टैक्स लगाते हो और दूसरी तरफ़ गाय के गोबर को पवित्र मानते हो। गोबर का लेप करने से तुम्हारा उद्धार नहीं हो सकता। तुम धोती बाँधते हो, माथे पर तिलक लगाते हो और हाथ में माला भी रखते हो, परंतु जिन मुसलमानों को मलेच्छ कहते हो और उन्हें छूना भी ठीक नहीं समझते, उनके दिए अन्न और पदार्थ खाते हो। तुम अंदर से हिंदू धर्म के अनुसार पूजा करते हो परंतु बाहर अपने हाकिमों को ख़ुश करने के लिए मुसलमानों के धर्म ग्रंथ पढ़ते हो। तुमने मुसलमानों वाली रीति अपनाई हुई है। गुरु साहिब उपदेश देते हैं: हर तरह के पाखंड त्यागकर नाम के साथ लिव जोड़ो तभी भवसागर से पार हो सकोगे।

महला १

माणस खाणे करह निवाज॥ छुरी वगाइन तिन गल ताग॥
तिन घर ब्रहमण पूरह नाद॥ उन्हा भी आवह ओई साद॥
कूड़ी रास कूड़ा वापार ॥ कूड़ बोल करह आहार ॥
सरम धरम का डेरा दूर॥ नानक कूड़ रहिआ भरपूर॥
मथै टिका तेड़ धोती कखाई॥ हथ छुरी जगत कासाई॥
नील वसत्र पहिर होवह परवाण॥ मलेछ धान ले पूजह पुराण॥
अभाखिआ का कुठा बकरा खाणा॥ चउके उपर किसै न जाणा॥
दे कै चउका कढी कार॥ उपर आए बैठे कूड़िआर॥
मत भिटै वे मत भिटै॥ इह अंन असाडा फिटै॥
तन फिटै फेड़ करेन॥ मन जूठै चुली भरेन॥
कहो नानक सच धिआईऐ॥ सुच होवै ता सच पाईऐ॥ २॥

माणस खाणे=मनुष्यों का भक्षण करनेवाले; **निवाज**=नमाज़; **वगाइन**=चलाते हैं; **ताग**= जनेऊ; **पूरह नाद**=शंख बजाते हैं; **रास**=पूँजी; **सरम**=लोक-लाज; **अभाखिआ**= दूसरी भाषा बोलनेवाले; **कुठा**=धीरे-धीरे मारा गया; **चउके**=चौका; **कार**=लकीर; **मत भिटै**=अपवित्र न हो जाए; **फिटै**=ख़राब हो जाए; **फेड़**=विकारों से भरा हुआ; **चुली**=कुल्ला।

सरलार्थ: गुरु नानक देव जी ने पिछले प्रसंगों में हिंदू धर्म की रस्मों पर प्रकाश डाला था। अब आप मुसलमानों और हिंदुओं दोनों के आचरण पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं: मनुष्यों को खा जानेवाले ज़ालिम मुसलमान हाकिम, नमाज़ पढ़ने में लगे हुए हैं। ऐसे ज़ालिम हाकिमों के खाने के लिए लोगों के गले पर छुरियाँ चलानेवाले हिंदू मुलाज़िम (नौकरी पेशा लोग), गले में जनेऊ पहने रहते हैं। ऐसे क़साई वृत्ति वाले लोगों के घर भोजन खाने गए ब्राह्मण शंख बजाते हैं। उन्हें ज्ञात होना चाहिए कि वे जैसा भोजन करेंगे, मन पर वैसा ही प्रभाव पड़ेगा। भाव यह है कि मेज़बानों के लूट और अत्याचार द्वारा इकट्ठे किए धन द्वारा बने भोजन में से सतोगुणी नहीं, बल्कि तमोगुणी प्रभाव पैदा होगा।

गुरु साहिब कहते हैं कि यदि पूँजी ही झूठ की हो तो व्यापार भी झूठ का ही होगा। जो लोग झूठ बोलकर भोजन करते या पेट भरते हैं, वे किसी पारमार्थिक लाभ की आशा कैसे कर सकते हैं?

गुरु साहिब सावधान करते हैं कि धर्म की मर्यादा और समाज की लाज, दोनों कहीं पीछे छूट गए हैं। न लोगों को परमात्मा का डर है और न ही उन्हें कोई लोक-लाज है। हर तरफ़ झूठ-फ़रेब और बुराई भरपूर है।

गुरु साहिब फ़रमाते हैं: पंडितों ने माथे पर तिलक भी लगाया होता है और गेरुआ रंग की धोती भी बाँधी होती है। वे निर्दयी क़साई की तरह सारे जगत् पर छुरी चलाते हैं। वे नीले कपड़े पहनकर मुसलमान हाकिमों की नज़र में स्वीकार हो जाते हैं और जिन मुसलमानों को वे मलेच्छ कहते हैं, उनके अन्न पर निर्भर होने के साथ-साथ पुराणों की पूजा भी करते हैं। वे दूसरी भाषा बोलनेवाले मुसलमानों द्वारा कलमा पढ़कर हलाल किया हुआ बकरा भी खाते हैं, परंतु जब यह अपवित्र मांस पकाते हैं तो चौके के गिर्द एक रेखा खींच देते हैं कि कोई इस रेखा को पार करके उस चौके के अंदर न आए। कितनी आश्चर्यजनक बात है कि जो चौके में बैठा है, वह स्वयं जूठा, अपवित्र और भ्रष्ट है, परंतु दूसरों को चौके में आने से रोक रहा है! जो व्यक्ति अपवित्र है, वह यह कह रहा है कि कोई चौके में न आए ताकि भोजन भ्रष्ट न हो जाए और खाने के अयोग्य न हो जाए।

कितनी भारी विडंबना है कि जिनका अपना शरीर विकारों से भरा हुआ है, वे झूठे मन से संकल्प लेकर पवित्र बनकर दिखाते हैं!

गुरु साहिब उपदेश देते हैं: उस सच्चे प्रभु का ध्यान करना चाहिए। इससे तन-मन पवित्र हो जाता है और प्रभुरूपी सत्य की भी प्राप्ति हो जाती है।

❖ गुरु साहिब ने पिछले श्लोक का अंत इस प्रकार किया था: 'छोडीले पाखंडा॥ नाम लइऐ जाहे तरंदा॥' इस श्लोक में कहते हैं: 'कहो नानक सच धिआईऐ॥ सुच होवै ता सच पाईऐ॥' सत्य का ध्यान करने का अभिप्राय नाम का सुमिरन करना है। आप बार-बार यह भाव दृढ़ करवाते हैं कि जो भी पारमार्थिक लाभ होता है, मन की निर्मलता और प्रभु की अंतर्मुख भक्ति से होता है। बाहरी दिखावे से अपने-आपको और संसार को तो धोखा दिया जा सकता है, परंतु प्रभु की प्रसन्नता प्राप्त करने का साधन, रहनी को निर्मल बनाते हुए, नाम का अभ्यास करना है।

पउड़ी

चितै अंदर सभ को वेख नदरी हेठ चलाइदा॥
आपे दे वडिआईआ आपे ही करम कराइदा॥
वडहो वडा वड मेदनी सिरे सिर धंधै लाइदा॥
नदर उपठी जे करे सुलताना घाह कराइदा॥
दर मंगन भिख न पाइदा॥१६॥

चितै=ध्यान में; **नदरी**=नज़र; **मेदनी**=सृष्टि, पृथ्वी; **उपठी**=उलटी; **सुलताना**=बादशाहों को; **न पाइदा**=नहीं मिलती।

सरलार्थ: गुरु नानक देव जी प्रभु की महिमा करते हुए कहते हैं: प्रभु के चित्त यानी ध्यान में सभी जीव हैं और वह सबको अपनी दृष्टि में रखता है। वह स्वयं ही लोगों से कर्म करवाता है और स्वयं ही उन्हें सम्मान बख़्शता है। वह बड़े से बड़ा प्रभु संपूर्ण सृष्टि के प्रत्येक जीव को

अपने-अपने कर्म में व्यस्त रखता है। यदि उसकी नज़र उलट जाए भाव नज़र बदल जाए तो वह बादशाहों को घसियारे और ऐसे भिखारी बना देता है, जिन्हें दर-दर माँगने पर भी भिक्षा नहीं मिलती।

❖ गुरु साहिब प्रभु के सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ होने का भाव दृढ़ करवा रहे हैं। आप समझा रहे हैं कि संपूर्ण सृष्टि प्रभु की दृष्टि में है। 'जिन जगत उपाइआ धंधै लाइआ तिसै विटहो कुरबाण जीउ॥'[107] जैसे उसे अच्छा लगता है, वह उसी तरह से उसे चलाता है। उसकी रचना पूरी तरह से उसकी रज़ा के अनुसार चल रही है। किसी हालत में भी कोई उसकी रज़ा से बाहर नहीं जा सकता। महानता बख़्शनेवाला भी वही है तथा बादशाहों को घसियारा और भिखारी बनानेवाला भी वही है।

सलोक और पउड़ी १७

सलोक महला १

जे मोहाका घर मुहै घर मुह पितरी दे॥
अगै वसत सिञाणीऐ पितरी चोर करे॥
वढीअह हथ दलाल के मुसफी एह करे॥
नानक अगै सो मिलै जि खटे घाले दे॥१॥

मोहाका=चोर; **मुहै**=चोरी करता है; **पितरी**=पितर, मृत्यु को प्राप्त हो चुके बुज़ुर्ग; **वढीअह**=काटे जाते हैं; **सिञाणीऐ**=पहचानी जाती है; **मुसफी**=न्याय करनेवाला।

सरलार्थ: गुरु नानक देव जी फ़रमाते हैं: यदि चोर किसी के घर में चोरी करके, अपने पितरों के नाम पर दान कर दे तो मालिक की दरगाह में वे चोरी के पदार्थ पहचाने जाते हैं और उसके पितरों पर भी चोरी का इलज़ाम लग जाता है। वहाँ न्याय करनेवाला धर्मराज यह न्याय करेगा कि दलाल भाव बेईमानी के धन से दान की रस्म पूरी करनेवाले पुरोहित के हाथ भी काट दो। जीव को सुख देनेवाला फल, हक़-हलाल की कमाई में से दिए दान का ही मिलता है।

❖ हिंदू धर्म में पूर्वजों के नाम पर श्राद्ध करवाने और दान करने का रिवाज है। कई लोग पितरों के निमित्त दान देते हैं। गुरु साहिब सावधान करते हैं कि परलोक में जो भी फल मिलता है, हक़-हलाल की कमाई में से दिए दान का मिलता है। बेईमानी की कमाई का दान लाभदायक होने के बजाय हानिकारक हो सकता है। गुरु अमरदास जी फ़रमाते हैं कि ज्ञानी लोग संसार में सचेत और सावधान होकर चलते हैं, जबकि अज्ञानी लोग अज्ञानता के अँधेरे में भटकते रहते हैं। आप सावधान करते हैं कि इस लोक में स्वयं की गई कमाई यानी भक्ति ही जीव के काम आती है। गुरु अमरदास जी कहते हैं:

गिआनी होए सो चेतंन होए अगिआनी अंध कमाए॥
नानक एथै कमावै सो मिलै अगै पाए जाए॥[108]

कबीर साहिब व्यंग्य करते हैं कि जब बुज़ुर्ग जीवित थे तो उन्हें कोई पूछता भी नहीं था और मरने के बाद उनके नाम पर श्राद्ध करवाए जाते हैं। श्राद्ध का सारा माल ब्राह्मण खा जाते हैं और बचा हुआ कुत्ते या कौए खा जाते हैं, पितरों को तो कुछ भी नहीं मिलता:

जीवत पितर न मानै कोऊ मूएं सिराध कराही॥
पितर भी बपुरे कहो किउ पावह कऊआ कूकर खाही॥[109]

गुरु नानक देव जी की वाणी है:

पिंड पतल मेरी केसउ किरिआ सच नाम करतार॥
ऐथै ओथै आगै पाछै एहो मेरा आधार॥
गंग बनारस सिफत तुमारी नावै आतम राउ॥
सचा नावण तां थीऐ जां अहिनिस लागै भाउ॥
इक लोकी होर छमिछरी ब्राहमण वट पिंड खाए॥
नानक पिंड बखसीस का कबहूं निखूटस नाहे॥[110]

श्राद्ध करते समय चावलों के गोले बनाकर पत्तलों पर रखे जाते हैं। कुछ पिंड पितरों के निमित्त और कुछ देवताओं के निमित्त दिए जाते हैं। गुरु साहिब कहते हैं: वह प्रभु मेरे लिए पिंड और पत्तल के समान है। उसका नाम मेरे लिए क्रिया-कर्म है। उसका नाम ही मेरी आत्मा के लोक और परलोक का वास्तविक आधार है। हे प्रभु! तेरी भक्ति मेरी आत्मा के लिए गंगा और यमुना का स्नान है। जिसे प्रभु की दया से नाम का भंडार मिल जाता है, फिर उसे कभी कोई कमी नहीं आती।

गुरु साहिब उपदेश दे रहे हैं कि जो भी पारमार्थिक लाभ मिलता है, हक़-हलाल की कमाई में से दिए गए दान और नाम का अभ्यास करने से मिलता है।

महला १

जिउ जोरू सिरनावणी आवै वारो वार॥
जूठे जूठा मुख वसै नित नित होए खुआर॥
सूचे एह न आखीअह बहन जि पिंडा धोए॥
सूचे सेई नानका जिन मन वसिआ सोए॥ २॥

जोरू=स्त्री; **सिरनावणी**=रजो धर्म (माहवारी); **वारो वार**=हर महीने; **जूठे**=अपवित्र लोग; **सूचे**=पवित्र, निर्मल; **सोए**=वह (प्रभु)।

❖ पुनरावृत्ति का उदाहरण देते हुए गुरु साहिब कहते हैं: झूठ बोलना झूठे व्यक्ति का स्वाभाविक कर्म बन जाता है। वह बार-बार झूठ में लिप्त होता है और यह झूठ उसे सदा अपमानित करता है। शरीर की सफ़ाई से मन की अपवित्रता दूर नहीं होती। शरीर को चाहे जितना मर्ज़ी साफ़ करते जाओ, इसे फिर साफ़ करने की आवश्यकता पड़ती है। इसी तरह नहाने से न तो शरीर हमेशा के लिए पवित्र होता है और न ही मन निर्मल होता है। सही अर्थों में पवित्र वही हैं जिनके मन में प्रभु निवास करता है।

पउड़ी

तुरे पलाणे पउण वेग हर रंगी हरम सवारिआ॥
कोठे मंडप माड़ीआ लाए बैठे कर पासारिआ॥
चीज करन मन भावदे हर बुझन नाही हारिआ॥
कर फुरमाइस खाइआ वेख महलत मरण विसारिआ॥
जर आई जोबन हारिआ॥१७॥

तुरे=घोड़े; **पलाणे**=काठियाँ; **माड़ीआ**=ऊँची हवेलियाँ; **चीज**=रंग-तमाशे; **कर फुरमाइस**=मनपसंद वस्तु के लिए हुक्म; **महलत**=अनेक महल।

सरलार्थ: गुरु नानक देव जी सावधान करते हैं: जिन लोगों के पास काठियों वाले, वायु के वेग से दौड़नेवाले घोड़े हैं, जिनके हरम (स्त्रियों के महल) में सुंदर वस्त्रों और गहनों से सजी स्त्रियाँ हैं; जो लोग अनेक तरह के सामान से भरे महल और मंडप बनाकर, उनमें बैठे हैं और प्रभु को भूलकर मनमानी विलासिता भोग रहे हैं और मनचाहे हुक्म चला रहे हैं, वे जीवन की बाज़ी हार जाते हैं। वे हुकूमत के ज़ोर पर धन इकट्ठा करके खाते-पीते, मौज उड़ाते हैं। वे महलों की विलासिता में लिप्त होकर मृत्यु को भूल जाते हैं। ऐसे लोगों के अंत समय में यौवन की हार हो जाती है और बुढ़ापा आकर दबोच लेता है।

❖ गुरु साहिब अनेक पउड़ियों में प्रभु द्वारा सृष्टि के संचालन के लिए सृजित किए गए कर्म और फल के नियम पर प्रकाश डाल आए हैं। आप सावधान कर रहे हैं कि विषय-विकारों और मनचाहे कृत्यों में फँसा हाकिम न अपने कर्मों की तरफ़ ध्यान देता है और न ही बुढ़ापे और मृत्यु से डरता है। गुरु अमरदास जी का कथन है: 'जोबन जांदा नदर न आवई जर पहुचै मर जाई॥'[111] जीव को पता ही नहीं चलता कि यौवन कब व्यतीत हो गया और कब बुढ़ापा मृत्यु में परिवर्तित हो गया। इसका कारण क्या है? ***हर बुझन नाही हारिआ***—उन्होंने प्रभुरूपी सत्य को झूठ समझा हुआ है और संसाररूपी झूठ को सत्य समझा हुआ है। उन्होंने यौवन और जीवन को ही सत्य समझा हुआ है तथा बुढ़ापे और मृत्यु को झूठ समझा हुआ है। ऐसे लोग मनुष्य जन्म का अमूल्य अवसर व्यर्थ गँवा लेते हैं। उन्हें सांसारिक पदार्थों की उपलब्धियाँ तो हो जाती हैं,

परंतु वे जीवन की बाज़ी हार जाते हैं। संसार में वे जितना चाहे मान-सम्मान प्राप्त कर लें, लेकिन कुल मालिक की दरगाह में अपमानित होते हैं।

सलोक और पउड़ी १८

सलोक महला १

जे कर सूतक मंनीऐ सभ तै सूतक होए॥
गोहे अतै लकड़ी अंदर कीड़ा होए॥
जेते दाणे अंन के जीआ बाझ न कोए॥
पहिला पाणी जीउ है जित हरिआ सभ कोए॥
सूतक किउ कर रखीऐ सूतक पवै रसोए॥
नानक सूतक एव न उतरै गिआन उतारे धोए॥१॥

सूतक=अपवित्रता; **पाणी...है**=पानी जीवों से भरपूर है; **जित**=जिस से; **हरिआ**=जीवित; **एव**=इस प्रकार।

सरलार्थ: गुरु नानक देव जी तर्क देते हैं: यदि थोड़ी देर के लिए यह मान लिया जाए कि जन्म के समय और मृत्यु के समय सूतक होता है, तो प्रश्न उत्पन्न होता है कि इस सूतक से कैसे बचा जाए? क्योंकि कोई ऐसी वस्तु नहीं, जिसमें सूतक न हो। रसोई में जो गोबर के उपले और लकड़ियाँ जलाते हैं, उनमें कीट होते हैं। वे कीट गोबर तथा लकड़ी में जन्म लेते और मरते हैं। फिर जो अनाज रसोई में प्रयोग करते हैं, उसके दाने-दाने में जीव होते हैं। पानी भी जीवों से भरपूर है। वे जीव पानी में ही जन्म लेते और मरते हैं तथा संपूर्ण वनस्पति ही नहीं, अन्य सभी जीवों का जीवन भी पानी के सहारे क़ायम है। जब रसोई का सारा सामान ही ऐसे जीवों से भरपूर है जो सदा जन्म लेते और मरते हैं, तो सूतक से कैसे बचा जा सकता है? हिंदू लोग सूतक उतारने के लिए स्नान करते हैं, कपड़े धोते हैं तथा कई अन्य उपाय करते हैं। गुरु साहिब कहते हैं कि ऐसी भ्रामक विधियों द्वारा सूतक नहीं उतर सकता। सूतक को केवल ज्ञान ही धोकर साफ़ कर सकता है।

❖ जन्म के समय जो अपवित्रता मानी जाती है, उसे सूतक कहते हैं और मृत्यु के समय की अपवित्रता को पातक कहते हैं। साधारणत: दोनों के लिए सूतक शब्द का प्रयोग किया जाता है। इस श्लोक में इस अपवित्रता का भ्रम दूर करते हैं। गुरु साहिब सावधान करते हैं कि सूतक का ख़्याल अज्ञानता की उपज है, इससे बचने का एकमात्र साधन सच्चा ज्ञान है। वह ज्ञान प्रभु के नाम द्वारा प्राप्त होता है। गुरु नानक देव जी वाणी के एक अन्य प्रसंग में कहते हैं:

ऐसा गिआन पदारथ नाम॥ गुरमुख पावस रस रस मान॥[112]

गुरु रामदास जी का कथन है:

गुर गिआन पदारथ नाम है हर नामो देए द्रिड़ाए॥
जिस परापत सो लहै गुर चरणी लागै आए॥[113]

महला १

मन का सूतक लोभ है जिहवा सूतक कूड़॥
अखी सूतक वेखणा पर त्रिअ पर धन रूप॥
कंनी सूतक कंन पै लाइतबारी खाहे॥
नानक हंसा आदमी बधे जम पुर जाहे॥ २॥

कूड़=झूठ; **पर त्रिअ**=पराई स्त्री; **कंन**=कानों में; **लाइतबारी**=चुग़ली, पराई निंदा; **हंसा**=हंस की तरह उज्ज्वल या निर्मल।

सरलार्थ: गुरु नानक देव जी पिछले श्लोक के भाव का विस्तार करते हुए कहते हैं: क्षण भर के लिए मान भी लें कि शरीर और कपड़े धोने से सूतक दूर हो जाएगा, परंतु इससे मन का सूतक तो दूर नहीं होता। मन लोभ द्वारा भ्रष्ट हो गया है और इनसान की जिह्वा को झूठ बोलने का सूतक है। आँखों को पराई स्त्री का रूप कामनाभरी दृष्टि से देखने का और पराए धन को लालचभरी दृष्टि से देखने का सूतक लगा हुआ है। जब दूसरों की निंदा-चुगली कानों में पड़ती है तो कान को सूतक हो जाता है। शरीर को

साफ़ करके हंस की तरह उज्ज्वल और निर्मल क्यों न कर लिया जाए, फिर भी सूतक को दूर नहीं किया जा सकता। मन पापों की गंदगी से मैला है, इसलिए यमदूत इसे मृत्यु के पश्चात् बाँधकर यमपुरी ले जाएँगे।

❖ गुरु साहिब सावधान करते हैं कि लोगों का सारा ध्यान शरीर की मैल साफ़ करने में है। मन पर लगी लोभ की मैल, जिह्वा पर लगी झूठ बोलने की मैल, आँखों पर लगी परस्त्री और परधन को बुरी नज़र से देखने की मैल और कानों को पराई निंदा सुनने की जो मैल लगी हुई है, उसे साफ़ करने की ओर कोई ध्यान नहीं देता। परिणाम यह होता है कि अपने मूल स्वभाव से पूरी तरह निर्मल आत्मा, मन-इंद्रियों द्वारा इकट्ठी की गई मैल के कारण यमदूतों के चंगुल में फँस जाती है।

महला १

सभो सूतक भरम है दूजै लगै जाए॥
जंमण मरणा हुकम है भाणै आवै जाए॥
खाणा पीणा पवित्र है दितोन रिजक संबाहे॥
नानक जिन्ही गुरमुख बुझिआ तिन्हा सूतक नाहे॥ ३॥

दूजै=प्रभु भक्तों के अलावा; **दितोन**=दिया है; **बुझिआ**=ज्ञान हो गया।

सरलार्थ: गुरु साहिब शरीर और मन, दोनों तरह के सूतक का वर्णन करके अपने विचारों को पूर्णता प्रदान करते हुए कहते हैं: यह कहना कि जन्म देनेवाले, जन्म लेनेवाले या मुर्दे के छू जाने से हम अपवित्र हो जाते हैं, कोरा भ्रम है। द्वैत या अज्ञानता के शिकार लोग ही इस भ्रम में रहते हैं। संसार में आवागमन का सिलसिला कुल मालिक के हुक्म से चल रहा है। खाने-पीनेवाली किसी चीज़ में सूतक समझना हमारा भ्रम है, क्योंकि प्रभु ने स्वयं खाद्य-पदार्थों को जीवों का रिज़क़ या ख़ुराक बनाया है। जो लोग गुरुमुखों के उपदेशानुसार उस सच्चे प्रभु और उसके खेल के रहस्य को समझ लेते हैं, वे हर प्रकार के सूतक से सदा के लिए आज़ाद हो जाते हैं।

❖ गुरु साहिब पहले यह संकेत कर आए हैं: *'नानक सूतक एव न उतरै गिआन उतारे धोए॥'* यहाँ फ़रमाते हैं: ***'नानक जिन्ही गुरमुख बुझिआ तिन्हा सूतक नाहे॥'*** अर्थात् गुरुमुखों के उपदेशानुसार नाम का अभ्यास करने से सत्य की पहचान हो जाती है तथा आत्मा पूरी तरह से निर्मल होकर, निर्मल प्रभु में समाकर उसका रूप हो जाती है। गुरु नानक देव जी वाणी के एक अन्य प्रसंग में कहते हैं:

सूतक अगन भखै जग खाए॥ सूतक जल थल सभ ही थाए॥
नानक सूतक जनम मरीजै॥ गुर परसादी हर रस पीजै॥[114]

आप उपदेश देते हैं कि सूतक को सही माना जाए तो संपूर्ण सृष्टि ही सूतक का शिकार नज़र आएगी। अग्नि सब वस्तुओं को नष्टकर देती है, इसलिए वह सूतक से भरपूर है। धरती और जल में सभी जगह सूतक का प्रसार है। जन्म-मरण का खेल संपूर्ण सृष्टि का अभिन्न अंग है। हर प्रकार के सूतक का उपचार एक ही है, सतगुरु की कृपा से अंतर में प्रभु के नाम का रस पीकर, आवागमन के चक्कर से मुक्त हो जाना। गुरु अमरदास जी फ़रमाते हैं:

मन का सूतक दूजा भाउ॥ भरमे भूले आवउ जाउ॥
मनमुख सूतक कबहि न जाए॥ जिचर सबद न भीजै हर कै नाए॥
सभो सूतक जेता मोह आकार॥ मर मर जंमै वारो वार॥
सूतक अगन पउणै पाणी माहि॥ सूतक भोजन जेता किछ खाहि॥
सूतक करम न पूजा होए॥ नाम रते मन निरमल होए॥
सतिगुर सेविऐ सूतक जाए॥ मरै न जनमै काल न खाए॥[115]

जब तक जीव जन्म-मरण के चक्कर से बँधा रहता है, शरीर और मन के अनेक प्रकार के सूतक या मैल का शिकार रहता है। जब वह सतगुरु के उपदेशानुसार नाम के साथ लिव जोड़ लेता है तो आवागमन के चक्कर और इससे उत्पन्न होनेवाले हर प्रकार के सूतक से सदा के लिए मुक्त हो जाता है। कबीर साहिब की वाणी है:

जल है सूतक थल है सूतक सूतक ओपत होई॥
जनमे सूतक मूए फुन सूतक सूतक परज बिगोई॥
कहो रे पंडीआ कउन पवीता॥ ऐसा गिआन जपहो मेरे मीता॥
नैनहो सूतक बैनहो सूतक सूतक स्रवनी होई॥
ऊठत बैठत सूतक लागै सूतक परै रसोई॥
फासन की बिध सभ कोऊ जानै छूटन की इक कोई॥
कह कबीर राम रिदै बिचारै सूतक तिनै न होई॥[116]

आप फ़रमाते हैं कि संपूर्ण मायामय संसार सूतक का शिकार है। केवल वह प्रभु निर्मल है। जो भक्त उस प्रभु के साथ मिल जाता है, वह भी निर्मल हो जाता है और उसका हर प्रकार के सूतक या मैल से सदा के लिए छुटकारा हो जाता है।

पउड़ी

सतिगुर वडा कर सालाहीऐ जिस विच वडीआ वडिआईआ॥
सह मेले ता नदरी आईआ॥ जा तिस भाणा ता मन वसाईआ॥
कर हुकम मसतक हथ धर विचहो मार कढीआ बुरिआईआ॥
सह तुठै नउ निध पाईआ॥१८॥

वडिआईआ=गुण; **सह**=पति परमेश्वर; **नउ निध**=नौ ख़ज़ाने।

सरलार्थ: गुरु नानक देव जी ने पिछले श्लोक का अंत इस विचार से किया था कि जो लोग सतगुरु की दया से प्रभुरूपी सत्य के साथ जुड़ जाते हैं, उनके शारीरिक, मानसिक और आत्मिक, सभी सूतक सदा के लिए धुल जाते हैं। गुरु साहिब कहते हैं: सतगुरु को सर्वोपरि मानकर उसके नाम का गुणगान करना चाहिए, क्योंकि उसमें अनगिनत गुण हैं। जब प्रभु ने सतगुरु के साथ मिला दिया तो सतगुरु प्रत्यक्ष दिखाई देने लगे। मालिक का भाणा हुआ तो सतगुरु को मन में भी बसा दिया। सतगुरु ने दया करके मस्तक पर हाथ रखा और सभी बुराइयों को बाहर निकाल दिया। प्रभु ने प्रसन्न होकर दया की, तो नौ निधियाँ प्राप्त हो गईं।

❖ गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि सतगुरु निराकार प्रभु का ही साकार रूप है। वह अनगिनत महान् पारमार्थिक गुणों का भंडार है। प्रभु की कृपा से जिसका सतगुरु से मिलाप हो जाता है, सतगुरु के उपदेश पर अमल करने से उसे धीरे-धीरे सतगुरु के पारमार्थिक गुणों की समझ आनी शुरू हो जाती है। सतगुरु दया करके, उसका विषय-विकारों, आशा-तृष्णा, मोह-ममता आदि अवगुणों से छुटकारा करवा देता है और उसे नौ निधियों की प्राप्ति हो जाती है। नौ निधियों का अर्थ है, नौ ख़ज़ाने भाव सब प्रकार की धन-संपत्तियों के भंडार।

गुरु साहिब ने जीव के समक्ष सांसारिक प्राप्तियों का नहीं, प्रभु प्राप्ति का आदर्श रखा है। गुरु साहिब ने केवल नौ निधियाँ ही नहीं बल्कि अठारह सिद्धियों को भी बंधनकारी माना है। गुरु अर्जुन देव जी का कथन है: '*सगल स्रिसट को राजा दुखीआ॥ हर का नाम जपत होइ सुखीआ॥*'[117] नौ निधियाँ तो एक तरफ़, यदि संपूर्ण सृष्टि का राज्य भी मिल जाए, तो भी आत्मा को शांति नहीं मिल सकती। आत्मिक शांति का स्रोत प्रभु का नाम है। गुरु नानक देव जी का कथन है:

पहला धरती साध कै सच नाम दे दाण॥
नउ निध उपजै नाम एक करम पवै नीसाण॥[118]

जिसे प्रभु की दया से नाम मिल गया, उसे प्रभु मिल गया और नौ निधियाँ उसके साथ ही आ गईं भाव लोक-परलोक के सुख प्राप्त हो गए। गुरु अमरदास जी का कथन है:

अंदर रंग सदा सचिआरा॥ गुर कै सबद हर नाम पिआरा॥
नउ निध नाम वसिआ घट अंतर छोडिआ माइआ का लाहा हे॥[119]

जिस पर प्रभु की दया हो जाती है, उसे संपूर्ण सिद्धियाँ और नौ निधियाँ प्राप्त हो जाती हैं। गुरु अर्जुन देव जी वाणी के एक अन्य प्रसंग में फ़रमाते हैं:

नउ निध अंम्रित प्रभ का नाम॥
देही मह इस का बिस्राम॥[120]

सलोक और पउड़ी १९

सलोक महला १

पहिला सुचा आप होए सुचै बैठा आए॥
सुचे अगै रखिओन कोए न भिटिओ जाए॥
सुचा होए कै जेविआ लगा पड़ण सलोक॥
कुहथी जाई सटिआ किस एह लगा दोख॥
अंन देवता पाणी देवता बैसंतर देवता लूण पंजवा पाइआ घिरत॥
ता होआ पाक पवित॥ पापी सिउ तन गडिआ थुका पईआ तित॥
जित मुख नाम न ऊचरह बिन नावै रस खाहे॥
नानक एवै जाणीऐ तित मुख थुका पाहे॥१॥

कोए...जाए=किसी ने जूठा नहीं किया था; **जेविआ**=खाया; **कुहथी जाई**=गंदा स्थान; **सटिआ**=फेंका; **दोख**=दोष; **बैसंतर**=आग; **पाक**=पकाया हुआ, पवित्र; **पापी सिउ**=पापों से; **तन गडिआ**=तन भरा हुआ है।

सरलार्थ: गुरु नानक देव जी समाज में प्रचलित बाहरी स्वच्छता के भ्रम पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं: शारीरिक स्वच्छता का अभिमान करनेवाला कोई कर्मकांडी ब्राह्मण, पहले स्वयं स्नान करके पवित्र होकर पवित्र की हुई रसोई में आकर बैठ जाता है। फिर स्नान से पवित्र हुआ रसोइया उसके सामने वह भोजन परोस देता है जो अभी किसी और ने जूठा नहीं किया। ब्राह्मण पवित्र श्लोक पढ़ता हुआ वह भोजन खाता है, परंतु इतनी पवित्रता से तैयार किए और खाये अन्न का अंत वही हुआ जो दूसरों द्वारा खाये अनाज या भोजन का होता है। वह भोजन विष्टा में बदल गया और उसे गंदे स्थान पर फेंका गया। भोजन के विष्टा का रूप धारण कर लेने का दोष किसके सिर पर दिया जाए? प्रचलित मान्यता के अनुसार अनाज भी देवता था, पानी भी देवता था, अग्नि भी देवता था, नमक भी देवता था और पाँचवाँ देवता घी था। इन पाँचों पवित्र पदार्थों से बना भोजन भी पवित्र था। इस भोजन को

खानेवाले व्यक्ति का शरीर पापों से भरा हुआ था, जिस कारण वह भोजन अपवित्र हो गया। गुरु साहिब सावधान करते हैं: जो मुख नाम का सुमिरन नहीं करता, जो नाम के अमृत से ख़ाली है, उसके मुख पर थूकें पड़ती हैं।

❖ गुरु साहिब समझाते हैं कि लोगों का सारा ध्यान बाहरी स्वच्छता पर केंद्रित है। इनसान अपनी तरफ़ से जितनी चाहे स्वच्छता रख ले, वह कभी भी पूर्ण स्वच्छता धारण नहीं कर सकता। तन, मन और आत्मा की सच्ची स्वच्छता का आधार प्रभु का निर्मल नाम है।

गुरु साहिब ने पिछले अनेक प्रसंगों में नाम को ही हर प्रकार के सदाचार एवं आत्मिक आचरण का आधार बताया था। यहाँ नाम को ही सच्ची स्वच्छता का आधार कह रहे हैं। गुरु साहिब की वाणी है: 'रैण अंधारी निरमल जोत॥ नाम बिना झूठे कुचल कछोत॥'[121] आप कहते हैं कि नाम विहीन व्यक्ति झूठा, गंदा और अछूत है। गुरु अर्जुन देव जी गउड़ी राग के एक शब्द में इस संपूर्ण विचारधारा का खुलासा इस प्रकार करते हैं:

मिल मेरे गोबिंद अपना नाम देहो॥ नाम बिना ध्रिग ध्रिग असनेहो॥
नाम बिना जो पहिरै खाए॥ जिउ कूकर जूठन मह पाए॥
नाम बिना जेता बिउहार॥ जिउ मिरतक मिथिआ सीगार॥
नाम बिसार करे रस भोग॥ सुख सुपनै नही तन मह रोग॥
नाम तिआग करे अन काज॥ बिनस जाए झूठे सभ पाज॥
नाम संग मन प्रीत न लावै॥ कोट करम करतो नरक जावै॥
हर का नाम जिन मन न आराधा॥ चोर की निआई जम पुर बाधा॥
लाख अडंबर बहुत बिसथारा॥ नाम बिना झूठे पासारा॥
हर का नाम सोई जन ले॥ कर किरपा नानक जिस दे॥[122]

गुरु अमरदास जी ने राग माझ में नाम की महिमा पर, एक पूरा शब्द उच्चारण किया है। उस शब्द में से कुछ प्रसंग इस प्रकार हैं:

1. हर निरमल गुर सबद सलाही सबदो सुण तिसा मिटावणिआ॥
2. निरमल नाम वसिआ मन आए॥
   मन तन निरमल माइआ मोह गवाए॥
3. जो निरमल सेवे सो निरमल होवै॥ हउमै मैल गुर सबदे धोवै॥
4. निरमल ते सभ निरमल होवै॥ निरमल मनूआ हर सबद परोवै॥
   निरमल नाम लगे बडभागी निरमल नाम सुहावणिआ॥[123]

आप समझाते हैं कि वह प्रभु निर्मल है। उसका नाम यानी शब्द भी निर्मल है। जो भाग्यशाली जीव उसके निर्मल नाम से जुड़ जाते हैं, उनका तन-मन दोनों निर्मल हो जाते हैं। गुरु साहिब का भाव है कि जब तक जीव मायामय संसार का अंग बना रहता है, वह सदैव मैला रहता है। जो प्रभु के नाम द्वारा प्रभु में लीन हो जाता है, वह हर प्रकार की मैल से निर्मल हो जाता है।

महला १

भंड जंमीऐ भंड निंमीऐ भंड मंगण वीआह॥
भंडहो होवै दोसती भंडहो चलै राह॥
भंड मुआ भंड भालीऐ भंड होवै बंधान॥
सो किउ मंदा आखीऐ जित जंमह राजान॥
भंडहो ही भंड ऊपजै भंडै बाझ न कोए॥
नानक भंडै बाहरा एको सचा सोए॥
जित मुख सदा सालाहीऐ भागा रती चार॥
नानक ते मुख ऊजले तित सचै दरबार॥ २॥

भंड=स्त्री से; **जंमीऐ**=जन्म लेते हैं; **निंमीऐ**=पालन किया जाता है; **मंगण**=मंगनी, सगाई; **चलै राह**=सिलसिला आगे चलता है; **जित**=जिससे; **राजान**=राजा भाव श्रेष्ठ पुरुष; **भंडै बाहरा**=जिसका जन्म स्त्री द्वारा नहीं हुआ, स्वयंभू; **भागा रती**=भाग्य का रत्न; **चार**=सुंदर।

सरलार्थ: गुरु नानक देव जी कहते हैं: मनुष्य स्त्री के गर्भ से ही जन्म लेता है और स्त्री ही उसका पालन करती है। स्त्री के साथ ही उसकी सगाई

और शादी होती है। स्त्री के साथ ही प्रेम होता है। स्त्री से ही भाईचारा आगे बढ़ता है और सभ्यता आगे बढ़ती है। पहली पत्नी मर जाती है तो दूसरी की तलाश की जाती है। स्त्री बच्चों को जन्म देती है तथा उसके द्वारा ही गृहस्थ जीवन और समाज की व्यवस्था आगे बढ़ती है। जिस स्त्री के गर्भ से राजा-महाराजा पैदा होते हैं, उसे बुरा कैसे कहा जा सकता है?

गुरु साहिब अपने तर्क को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं: एक स्त्री दूसरी स्त्री को जन्म देती है। वह स्त्री आगे संतान को जन्म देती है। स्त्री के बिना कोई जन्म ले ही नहीं सकता। केवल वह सच्चा अविनाशी प्रभु ही स्त्री के बिना अस्तित्व में आया है। आप कहते हैं: चाहे स्त्री हो या पुरुष, जो कोई भी प्रभु की महिमा का गान या भक्ति करता है, उसका भाग्य उदय हो जाता है और वह उज्ज्वल मुख लेकर, सम्मानपूर्वक प्रभु के दरबार में स्वीकार होता है।

❖ जिस प्रकार समाज में कई प्रकार के वहम या भ्रम प्रचलित हैं, उसी प्रकार स्त्री को छोटा या घटिया समझने की कुरीति भी प्रचलित है। गुरु साहिब दृढ़ शब्दों में तर्क देते हुए समझाते हैं कि स्त्री को पुरुष से निम्न समझना कोरी अज्ञानता और मूर्खता है।

मध्यकालीन समाज में निम्न जातियों की तरह ही, स्त्री जाति को भी नीची दृष्टि से देखा जाता था। प्राचीन हिंदू समाज में नारी को सम्माननीय स्थान प्राप्त था। उस समाज में राजा या अन्य व्यक्ति द्वारा करवाए जानेवाले यज्ञ में यदि उसकी पत्नी शामिल नहीं होती, तो उस यज्ञ को पूर्ण नहीं माना जाता था। पत्नी की ग़ैर मौजूदगी में वह पत्नी की सोने की मूर्ति अपने पास रखता था। इसी प्रकार स्वयंवर की रस्म से पता चलता है कि स्त्री अपने वर का चुनाव स्वयं करती थी। उसे अपने पति के चुनाव की आज़ादी थी और उसे अपनी मर्ज़ी के खिलाफ़ किसी अन्य को अपना पति मानने के लिए मजबूर नहीं किया जाता था। पति को पत्नी के समक्ष अपनी योग्यता साबित करने के लिए भरसक प्रयत्न करना पड़ता था।

उस समाज में स्त्री को पुरुष की अर्धांगिनी या आधा हिस्सा कहा जाता था। यह बात स्त्री को नीचा दिखाने के उद्देश्य से नहीं कही गई थी।

इसमें यह भाव छिपा हुआ था कि स्त्री के बिना पुरुष अधूरा है। स्त्री पुरुष की पूरक है। योग मत और दूसरे संप्रदायों के प्रभावाधीन तथा किसी हद तक भारत में विदेशी साम्राज्य के आने से स्त्री की अवस्था बिगड़ती गई। धीरे-धीरे स्त्री को पुरुष की कमज़ोरी कहा जाने लगा। ग़लत तरीक़े से किए गए प्रचार के कारण समाज में यह धारणा ज़ोर पकड़ती गई कि स्त्री, पुरुष की गिरावट का कारण बनती है। कितने आश्चर्य की बात है कि गिरता तो पुरुष है, परंतु अपनी गिरावट के लिए ज़िम्मेदार स्त्री को बना देता है। यह इनसान के मन का स्वभाव है कि यह कभी अपने कर्म की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर नहीं लेता, बल्कि दूसरों को दोषी ठहरा देता है।

गुरु साहिब द्वारा इस विषय में उच्चारण किया गया यह श्लोक सारे मध्यकालीन साहित्य में अपनी मिसाल आप है। स्त्री को केवल स्त्री होने के कारण हीन समझना, गुरु साहिब को किसी भी प्रकार स्वीकार नहीं है। केवल वाणी में ही नहीं, गुरु साहिब की संगत में भी स्त्रियों को पुरुषों जैसी समानता प्राप्त थी।

भंड जंमीऐ भंड निंमीऐ भंड मंगण वीआह॥—इस कथन में बहुत सूक्ष्म, परंतु गूढ़ व्यंग्य छिपा हुआ है। गुरु साहिब कहते हैं कि पुरुष को जन्म देनेवाली और उसका पालन-पोषण करनेवाली स्त्री को उससे छोटा कैसे कहा जा सकता है? यदि पुरुष स्त्री को छोटा या घटिया समझता है तो उसकी कोख से जन्म लेनेवाला पुरुष बड़ा और उत्तम कैसे हो सकता है? पुरुष पालन-पोषण करनेवाली अपनी जननी से बड़ा कैसे हो सकता है? स्त्री को निम्न समझनेवाला उसी के साथ सगाई और विवाह करके स्वयं बड़ा कैसे हो सकता है?

गुरु नानक देव जी की वाणी में तर्क का रंग इतना गहरा और प्रबल है कि कोई घटिया या अधूरी दलील उसके सामने टिक नहीं सकती। गुरु साहिब दलील देते हैं: '*भंडहो होवै दोसती भंडहो चलै राह॥*'—जो स्त्री सारा जीवन मित्र की तरह पुरुष का साथ निभाती है और जो मानव जाति को आगे बढ़ाने में सहायक होती है, आप उसे छोटा कैसे कह सकते हैं? ***भंड मुआ भंड भालीऐ***—यदि स्त्री वास्तव में बुरी है, तो आप एक पत्नी की मृत्यु हो जाने पर दूसरी पत्नी की तलाश क्यों करते हैं? ***भंड होवै बंधान॥***—गुरु साहिब 'माझ की वार' में कहते हैं:

'*गोरी सेती तुटै भतार॥ पुतीं गंढ पवै संसार॥*'[124] यदि पति अपनी पत्नी से नाराज़ हो जाए, तो उसकी कोख से पैदा हुए पुत्र के कारण, उनके संबंध फिर से अच्छे हो जाते हैं और वे संसार में अपने परिवार को आगे बढ़ाते हैं। स्त्री, कुल को आगे बढ़ाती है, वंश का नाम आगे बढ़ाने में सहायक होती है। ***सो किउ मंदा आखीऐ जित जंमह राजान॥***—'*राजान*' पद को विशाल अर्थों में लेना चाहिए। गुरु साहिब कहते हैं: जो स्त्री श्रेष्ठ पुरुषों को जन्म देती है, जो राजाओं, दार्शनिकों, वैज्ञानिकों, डॉक्टरों, साधु-महात्माओं की जननी है, आप उसे छोटा या घटिया कैसे कह सकते हैं?

भंडहो ही भंड ऊपजै भंडै बाझ न कोए॥—स्त्री ही स्त्री को जन्म देती है और इस प्रकार मनुष्य जाति आगे बढ़ती है। संसार का कौन-सा ऐसा जीव है जो बिना स्त्री के जन्म लेता है। ***नानक भंडै बाहरा एको सचा सोए॥***—अपने-आप अस्तित्व में आए उस अकालपुरुष के अलावा प्रत्येक जीव अपने जन्म के लिए स्त्री पर निर्भर है। इसलिए स्त्री को किसी भी प्रकार से पुरुष से छोटा या घटिया समझना कोरी अज्ञानता है।

गुरु साहिब ने इस प्रसंग में 'एको सचा सोए' का वर्णन शामिल करके यह सूक्ष्म संकेत दिया है कि स्त्री को भी पुरुष की तरह उस कर्ता पुरुष ने सृजित किया है और उस द्वारा सृजित किसी भी वस्तु को घटिया कहना कर्ता का निरादर करना है। गुरु साहिब ने तीसरी पउड़ी में संकेत किया था: '*अगै करणी कीरत वाचीऐ बह लेखा कर समझाइआ॥*' आपने 10वीं पउड़ी के साथ सम्मिलित श्लोक में कहा था: '*अगै जात न जोर है अगै जीउ नवे॥ जिन की लेखै पत पवै चंगे सेई केए॥*' गुरु साहिब समझा रहे हैं कि न पुरुष, पुरुष होने के कारण छोटा या बड़ा है और न ही औरत, औरत होने के कारण बड़ी या छोटी है। उस दरबार में करनी देखी जाती है, भक्ति भाव देखा जाता है। उस दरबार में जीव स्त्री-पुरुष के रूप में नहीं, जीवात्मा के रूप में पहुँचते हैं और आत्मा न पुरुष है, न स्त्री। गुरु अमरदास जी '*मारू वार*' में कहते हैं : '*अगै जात न पुछीऐ करणी सबद है सार॥*'[125]

जित मुख सदा सालाहीऐ भागा रती चार॥ नानक ते मुख ऊजले तित सचै दरबार॥—आप कहते हैं कि वह मुख सुंदर तथा भाग्यशाली है जो

सदैव प्रभु का यशोगान करता है। जो कोई भी नाम का अभ्यास करता है, वह दरगाह में स्वीकार हो जाता है, चाहे वह बलवान् है या निर्बल, धनवान् है या निर्धन, विद्वान् है या अनपढ़, हिंदू है या मुसलमान, ब्राह्मण है या शूद्र, स्त्री है या पुरुष।

पउड़ी

सभ को आखै आपणा जिस नाही सो चुण कढीऐ॥
कीता आपो आपणा आपे ही लेखा संढीऐ॥
जा रहणा नाही ऐत जग ता काइत गारब हंढीऐ॥
मंदा किसै न आखीऐ पड़ अखर एहो बुझीऐ॥
मूरखै नाल न लुझीऐ॥१९॥

संढीऐ=भुगतना पड़ता है; **काइत**=क्यों; **गारब**=अहंकार; **हंढीऐ**=करते हैं; **मूरखै**... **लुझीऐ**=मूर्ख से झगड़ा या बहस नहीं करनी चाहिए।

सरलार्थ: '*सभ को आखै आपणा जिस नाही सो चुण कढीऐ॥*'—इस पंक्ति के यह अर्थ किए जाते हैं कि प्रत्येक मनुष्य अहंकारवश अपनी बड़ाई करता है। कोई ऐसा व्यक्ति ढूँढ़कर या अलग करके दिखाओ, जो मैं-मेरी या हौंमैं के अधीन न हो? इसके दूसरे अर्थ यह किए जाते हैं कि सब लोग यह दावा करते हैं कि प्रभु उनका है और वे दूसरों की तुलना में अपने-आपको प्रभु के अधिक नज़दीक समझते हैं। कोई ऐसा व्यक्ति दिखाओ जो उस प्रभु को अपना न कहता हो। गुरु साहिब समझाते हैं कि प्रभु के दरबार में कर्म देखे जाते हैं और प्रत्येक व्यक्ति को अपने कर्मों के अनुसार फल भोगना पड़ता है।

गुरु नानक देव जी फ़रमाते हैं कि जब यह अटल सच्चाई है कि संसार में किसी ने सदा नहीं रहना, तो अहंकार क्यों करें? धर्म ग्रंथों के पाठ-विचार से यह बात समझ लेनी चाहिए कि सब इनसान बराबर हैं और किसी को बुरा, छोटा या घटिया नहीं कहना चाहिए और मूर्खों के साथ किसी तरह के वाद-विवाद में नहीं पड़ना चाहिए।

❖ ***सभ को आखै आपणा जिस नाही सो चुण कढीऐ॥***
कीता आपो आपणा आपे ही लेखा संढीऐ॥

गुरु साहिब ने पीछे स्त्री-पुरुष के आधार पर किए गए भेदभाव का खंडन किया है। इस पउड़ी में अपने-आपको ऊँचा समझने की अज्ञानता पर प्रकाश डाल रहे हैं।

इस प्रसंग का चाहे यह अर्थ कर लिया जाए कि मनुष्य का हौंमैं के अधीन होकर अपने-आपको बड़ा समझना अज्ञानता है या यह अर्थ किया जाए कि अपने-आपको दूसरों की तुलना में प्रभु के अधिक नज़दीक समझना अज्ञानता है, एक ही बात है। गुरु साहिब इस बात पर बल देते हैं कि इस प्रकार के विचार प्रभु के दरबार में कोई अर्थ नहीं रखते। उस दरबार में जीव के कर्म देखे जाते हैं, उसका भक्तिभाव देखा जाता है। उस दरबार में जीव अपने-आपको बड़ा समझने से नहीं, अपनी करनी द्वारा स्वीकार होता है।

जा रहणा नाही ऐत जग ता काइत गारब हंढीऐ॥—गुरु साहिब उपदेश देते हैं कि हर प्रकार के अहंकार का संबंध शरीर के साथ है। जब शरीर नाशवान् है और किसी भी धर्म या जाति का कोई व्यक्ति सदैव संसार में नहीं रह सकता, तो फिर अहंकार किस चीज़ का करते हैं? गुरु तेग़ बहादुर जी उपदेश देते हैं कि संसार भी नाशवान् है, इसके पदार्थ भी नाशवान् हैं और शरीर भी नाशवान् है, इसलिए किसी चीज़ का अहंकार नहीं किया जा सकता। नाशवान् संसार का अहंकार त्यागकर, अविनाशी प्रभु के साथ प्रेम करना चाहिए। गुरु तेग़ बहादुर जी फ़रमाते हैं:

गरब करत है देह को बिनसै छिन मै मीत॥
जिह प्रानी हर जस कहिओ नानक तिह जग जीत॥[126]

मंदा किसै न आखीऐ पड़ अखर एहो बुझीऐ॥ मूरखै नाल न लुझीऐ॥—गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि सब लोगों को उस एक प्रभु ने उत्पन्न किया है। धर्म ग्रंथों में भी यह भाव दृढ़ करवाया गया है कि किसी जीव को छोटा या बुरा नहीं कहना चाहिए। बाबा फ़रीद की वाणी है:

फरीदा खालक खलक मह खलक वसै रब माहे॥
मंदा किस नो आखीऐ जां तिस बिन कोई नाहे॥[127]

सबमें प्रभु समाया हुआ है और सब लोग उसमें समाये हुए हैं। जब उसके बिना कोई दूसरा है ही नहीं, तो फिर किसी को बुरा कैसे कहा जा सकता है?

गुरु साहिब दूसरी बात यह समझाते हैं कि अज्ञानी के साथ कभी विवाद में नहीं पड़ना चाहिए। कबीर साहिब का कथन है:

संत मिलै किछ सुनीऐ कहीऐ॥ मिलै असंत मसट कर रहीऐ॥
बाबा बोलना किआ कहीऐ॥ जैसे राम नाम रव रहीऐ॥
संतन सिउ बोले उपकारी॥ मूरख सिउ बोले झख मारी॥[128]

संत-महात्मा समझाते हैं: 'मूरख को समझावणे गिआन गांठ का जाए'। गुरु नानक देव जी का कथन है:

पंडित संग वसह जन मूरख आगम सास सुने॥
अपना आप तू कबहु न छोडस सुआन पूछ जिउ रे॥[129]

ज्ञानी की संगति में साँस-साँस परमार्थ की बातें सुनने के पश्चात् भी मूर्ख की वृत्ति नहीं बदलती।

सलोक और पउड़ी २०

सलोक महला १

नानक फिकै बोलिऐ तन मन फिका होए॥
फिको फिका सदीऐ फिके फिकी सोए॥
फिका दरगह सटीऐ मुह थुका फिके पाए॥
फिका मूरख आखीऐ पाणा लहै सजाए॥१॥

फिकै=रूखा, कड़वा; **सदीऐ**=बुलाते हैं; **सटीऐ**=धक्के दिए जाते हैं; **मुह...पाए**=उसके मुँह पर थूका जाता है; **पाणा...सजाए**=उसे जूते मारकर सज़ा दी जाती है।

सरलार्थ: गुरु नानक देव जी फ़रमाते हैं: इनसान जब दूसरे के साथ फीका या कड़वा बोलता है तो वह यह नहीं सोचता कि किसी दूसरे को बुरा कहने में अपने तन-मन की हानि है। जो व्यक्ति सदा फीके या कड़वे वचन बोलता है, उसे लोग फीका या कड़वा कहना शुरू कर देते हैं और वह इस रूप में ही बदनाम हो जाता है। कड़वे वचनों द्वारा दूसरों का दिल दुखानेवाले व्यक्ति को मालिक की दरगाह से धक्के मिलते हैं तथा वह अपमानित होता है। उसे मूर्ख या अज्ञानी कहा जाता है। उसके मुख पर जूते पड़ते हैं भाव उसका अपमान किया जाता है।

❖ गुरु साहिब उपदेश दे रहे हैं कि न केवल बुरे कर्मों से बचना चाहिए, बल्कि कड़वे और रूखे वचनों से किसी का दिल भी नहीं दुखाना चाहिए। गुरु साहिब वाणी के अन्य प्रसंग में फ़रमाते हैं:

जित बोलिऐ पत पाईऐ सो बोलिआ परवाण॥
फिका बोल विगुचणा सुण मूरख मन अजाण॥
जो तिस भावह से भले होर कि कहण वखाण॥[130]

गुरु नानक देव जी उपदेश देते हैं:

परविरती नरविरति पछाणै॥ गुर कै संग सबद घर जाणै॥
किस ही मंदा आख न चलै सच खरा सचिआरा हे॥[131]

प्रभु के भक्त को चाहिए कि गृहस्थ और त्याग, संसार में रहने और संसार से मुक्त होने की युक्ति पहचाने। उसे चाहिए कि किसी को बुरा न कहे और सतगुरु की संगति द्वारा शब्द के स्रोत, प्रभु के पास पहुँचकर सही अर्थों में सच्चा बन जाए। बाबा फ़रीद कहते हैं:

इक फिका न गालाए सभना मै सचा धणी॥
हिआउ न कैही ठाह माणक सभ अमोलवे॥
सभना मन माणिक ठाहण मूल मचांगवा॥
जे तउ पिरीआ दी सिक हिआउ न ठाहे कही दा॥[132]

आप दलील देते हैं: सबके अंदर एक सच्चे प्रभु का निवास है और सब मनुष्य हीरों के समान अमूल्य हैं, इसलिए किसी का दिल नहीं दुखाना चाहिए। आप उपदेश देते हैं: मेरे प्यारे! यदि तेरे अंदर प्रियतम से मिलने की तड़प है, तो भूलकर भी किसी का दिल न दुखाना, क्योंकि सभी दिल हीरों के समान अमूल्य हैं।

महला १

अंदरहो झूठे पैज बाहर दुनीआ अंदर फैल॥
अठसठ तीरथ जे नावह उतरै नाही मैल॥
जिन्ह पट अंदर बाहर गुदड़ ते भले संसार॥
तिन्ह नेह लगा रब सेती देखन्हे वीचार॥
रंग हसह रंग रोवह चुप भी कर जाह॥
परवाह नाही किसै केरी बाझ सचे नाह॥
दर वाट उपर खरच मंगा जबै दे त खाह॥
दीबान एको कलम एका हमा तुम्हा मेल॥
दर लए लेखा पीड़ छुटै नानका जिउ तेल॥ २॥

पैज=इज़्ज़त; **फैल**=फैलाव, प्रसार; **पट**=रेशम; **गुदड़**=फटे-पुराने कपड़े; **सेती**=के साथ; **वीचार**=इच्छा, चाह; **रंग**=प्रेम के रंग में; **किसै केरी**=किसी की; **नाह**=पति, मालिक; **वाट**=मार्ग, रास्ता; **हमा तुम्हा**=हरेक के साथ; **पीड़**=पीसकर।

सरलार्थ: गुरु नानक देव जी कहते हैं: जो व्यक्ति अंदर से झूठे हैं, परंतु उन्होंने बाहर संसार में अपनी इज़्ज़त का आडंबर रचा हुआ है, यदि वे अठसठ तीर्थों पर स्नान भी कर लें, तो भी उनकी आंतरिक मैल दूर नहीं हो सकती। इसके विपरीत जो लोग बाहर से देखने में तो गुदड़ी जैसे हैं, परंतु अंदर से (प्रभु और नाम के प्रेम के कारण) रेशम के समान कोमल हैं, वे ही संसार में भले हैं। उनका प्रभु के साथ प्रेम है और उनके अंदर उसके दीदार की तड़प है। प्रियतम प्रभु के प्रेम के रंग में रँगे हुए भक्त, उसके प्रेम में कभी हँस पड़ते हैं, कभी रो देते हैं और कभी अपने-आप

में मग्न होकर चुप हो जाते हैं। उन्हें उस सच्चे मालिक के अलावा अन्य किसी वस्तु की कोई परवाह नहीं होती। वे उस मालिक से ही उसके दर तक पहुँचने के लिए नामरूपी ख़र्च और भोजन के लिए विनती करते हैं तथा सब्र और संतोष के साथ उसकी बख़्शिश का इंतज़ार करते हैं।

गुरु साहिब सावधान करते हैं कि प्रभु के दरबार में कर्मों का लेखा रखनेवाला दीवान एक ही है और कर्मों के अनुसार तक़दीरों का लेख लिखनेवाली कलम भी एक ही है। जब वह दीवान या धर्मराज कर्मों का लेखा माँगेगा तो दंभी और कुकर्मी इस तरह से पीसे जाएँगे जिस तरह से तिलों को कोल्हू में पीसा जाता है।

❖ ***अंदरहो झूठे पैज बाहर दुनीआ अंदर फैल॥***
अठसठ तीरथ जे नावह उतरै नाही मैल॥
जिन्ह पट अंदर बाहर गुदड़ ते भले संसार॥
तिन्ह नेह लगा रब सेती देखन्हे वीचार॥

गुरु साहिब समझा रहे हैं कि बड़ाई शरीर की सफ़ाई की नहीं, बल्कि मन की निर्मलता की है। इस प्रकार प्रभु के भक्त बाहर से देखने में चाहे कठोर स्वभाव वाले प्रतीत होते हैं, परंतु अंदर से रेशम की तरह कोमल होते हैं। ऐसे भक्त धन्य हैं, क्योंकि सांसारिक लोगों के अंदर मायामय शक्लों और पदार्थों को प्राप्त करने की अग्नि प्रचंड होती है, जबकि प्रभु के भक्तों के हृदय में अपने प्यारे प्रियतम के दीदार की प्रबल इच्छा होती है। गुरु साहिब समझाते हैं कि प्रभु के सच्चे भक्त किसी इच्छा की पूर्ति के लिए नहीं, विशुद्ध प्रेम से प्रभु की भक्ति करते हैं। उनकी भक्ति के पीछे कोई सांसारिक स्वार्थ नहीं होता, केवल प्रभु के दर्शन की प्रबल चाह होती है। गुरु रामदास जी ने यह भाव दो प्रकार से प्रकट किया है। आप पहले प्रसंग में कहते हैं:

बसुधा सपत दीप है सागर कढ कंचन काढ धरीजै॥
मेरे ठाकुर के जन इनहो न बाछह हर मागह हर रस दीजै॥[133]

आप कहते हैं कि संपूर्ण पृथ्वी, सात समुद्र और सात द्वीपों की धन-दौलत का ढेर लगा दिया जाए, तो भी प्रभु के भक्त आँख उठाकर उसकी तरफ़ नहीं देखते।

वे तो प्रभु से प्रभु को माँगते हैं, प्रभु का नाम माँगते हैं। आप दूसरे प्रसंग में कहते हैं:

सुरग मुकत बैकुंठ सभ बांछह नित आसा आस करीजै॥
हर दरसन के जन मुकत न मांगह मिल दरसन त्रिपत मन धीजै॥[134]

कुछ लोग स्वर्गों और बैकुंठों की आशा रखकर प्रभु की भक्ति करते हैं और कुछ मुक्ति की आशा लेकर। सच्चे भक्त के मन में केवल हरि के दर्शनों की प्यास होती है। उन्हें जब भी धैर्य और शांति मिलती है, प्रियतम के दर्शन से मिलती है। गुरु साहिबान समझा रहे हैं कि सच्चे भक्त प्रभु के प्रेम के रंग में इस प्रकार रँगे होते हैं कि वे लोक-परलोक की हर इच्छा से ऊपर उठ जाते हैं और केवल प्रभु प्राप्ति के लिए प्रभु की भक्ति करते हैं।

रंग हसह रंग रोवह चुप भी कर जाह॥
परवाह नाही किसै केरी बाझ सचे नाह॥

प्रभु के प्रेम के रंग में रँगे उसके भक्तों का हँसना-रोना, अपने प्रियतम के लिए होता है, किसी सांसारिक वस्तु या व्यक्ति के लिए नहीं। वह उस मालिक के अलावा किसी अन्य वस्तु की इच्छा नहीं रखते। उन्हें न तो सांसारिक सुखों की चाहत होती है और न ही पदवियों और प्राप्तियों की। वे केवल प्रभु को प्रेम के योग्य समझते हैं और किसी को नहीं।

दर वाट उपर खरच मंगा जबै दे त खाह॥—गुरु साहिब कहते हैं कि मैं उस मालिक के दर पर खड़ा उससे रास्ते का ख़र्च माँग रहा हूँ। प्रभु जब दया करके मुझे वह भोजन बख़्शेगा, तब मैं उसे खाऊँगा। गुरु साहिब का संकेत नामरूपी भोजन की तरफ़ है।

गुरु साहिबान की वाणी में रास्ते के ख़र्च या भोजन के लिए 'तोसा' शब्द का प्रयोग किया गया है। गुरु अमरदास जी का कथन है:

मन का तोसा हर नाम है हिरदै रखहो सम्हाल॥
एह खरच अखुट है गुरमुख निबहै नाल॥[135]

गुरु रामदास जी फ़रमाते हैं कि परलोक के मार्ग का वास्तविक भोजन या ख़र्च प्रभु का नाम है:

हर का मारग आखीऐ कहो कित बिध जाईऐ॥
हर हर तेरा नाम है हर खरच लै जाईऐ॥[136]

दीबान एको कलम एका हमा तुम्हा मेल॥
दर लए लेखा पीड़ छुटै नानका जिउ तेल॥

गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि संसार में परस्पर मिलाप और वियोग का सारा प्रसार कर्ता द्वारा लिखे लेख के अनुसार हो रहा है। उस सृजनहार ने सृष्टि का संचालन कर्मफल के नियमाधीन किया हुआ है। अज्ञानतावश जीव इस नियम की तरफ़ से लापरवाह होकर मनचाहे कर्म करता रहता है, जिसकी वजह से जीव को असहनीय पीड़ा भोगनी पड़ती है। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं:

संग न कोई भईआ बेबा॥ माल जोबन धन छोड वञेसा॥
करण करीम न जातो करता तिल पीड़े जिउ घाणीआ॥[137]

जो लोग प्रभु को भूलकर संसार में मनचाहे कर्म करते रहते हैं, उन्हें उस दरबार में ऐसे पीसा जाता है, जिस प्रकार तेल निकालने के लिए तिलों को पीसा जाता है।

पउड़ी

आपे ही करणा कीओ कल आपे ही तै धारीऐ॥
देखह कीता आपणा धर कची पकी सारीऐ॥
जो आइआ सो चलसी सभ कोई आई वारीऐ॥
जिस के जीअ पराण हह किउ साहिब मनहो विसारीऐ॥
आपण हथी आपणा आपे ही काज सवारीऐ॥ २०॥

करणा कीओ=जगत् की रचना की है; **कल**=शक्ति; **सारीऐ**=नर्द या गोटी; **जीअ**=जीव, आत्मा; **पराण**=जान-प्राण।

सरलार्थ: इस पउड़ी में गुरु नानक देव जी फ़रमाते हैं: हे प्रभु! तुमने स्वयं ही जगत् की रचना की है, तुमने स्वयं ही इसमें अपनी शक्ति (कला) रखी है। तुमने रचनारूपी चौपड़ के खेल में स्वयं ही कच्ची और पक्की गोटियाँ रखी हुई हैं और तुम स्वयं ही उन चालों को चलते हुए देख रहे हो। जो कोई जन्म लेता है, वह समय आने पर यहाँ से चला जाता है। गुरु साहिब उपदेश देते हैं: जिस मालिक ने तुझे प्राण बख़्शे हैं, यह आत्मा जिस परमात्मा की अंश है, उसे कभी भी बिसारना नहीं चाहिए। उस साहिब को प्रत्येक क्षण याद रखना चाहिए। प्रभु से मिलाप का कार्य स्वयं ही जल्दी से जल्दी पूरा करना चाहिए।

❖ ***आपे ही करणा कीओ कल आपे ही तै धारीऐ॥***
देखह कीता आपणा धर कची पकी सारीऐ॥

इस पउड़ी में संसार की तुलना चौसर के खेल से की गई है। गुरु साहिब कहते हैं कि चौरासी का खेल या आवागमन का नियम उस कर्ता द्वारा बनाया गया है। इसमें गोटियाँ अपने-आप नहीं चलतीं, बल्कि बाज़ी खेल रहे खिलाड़ी उन्हें चलाते हैं।

देखह कीता आपणा धर कची पकी सारीऐ॥—गुरु साहिब वाणी के एक अन्य प्रसंग में फ़रमाते हैं: '*बबै बाजी खेलण लागा चउपड़ कीते चार जुगा॥ जीअ जंत सभ सारी कीते पासा ढालण आप लगा॥*'[138] रचनारूपी चौसर का कर्ता भी मालिक है और इसका खिलाड़ी भी वही है। इसके साथ ही गुरु साहिब यह चेतावनी भी देते हैं कि रचनारूपी चौसर की गोटियाँ निर्जीव नहीं हैं। प्रभु ने उनमें आत्मा और प्राण रखे हैं। हालाँकि चौसर की निर्जीव गोटियों का अपना कोई उद्देश्य नहीं होता, परंतु रचनारूपी चौसर में जीवात्मारूपी गोटियों का 'अपना कार्य' भी है और वह कार्य उन्हें 'अपने हाथों' कर लेना चाहिए।

जो आइआ सो चलसी सभ कोई आई वारीऐ॥—चौसर के खेल में हर गोटी अपनी बाज़ी के अनुसार आगे बढ़ती है। इसी प्रकार यह संसार चलायमान है। जिस जीव का समय पूरा हो जाता है, वह संसार से कूच कर जाता है।

जिस के जीअ पराण हह किउ साहिब मनहो विसारीऐ॥
आपण हथी आपणा आपे ही काज सवारीऐ॥

जिस मालिक ने आत्मा और प्राणों की दात बख़्शी है, उसे कभी बिसारना नहीं चाहिए और प्रभु के साथ मिलाप करने का अपना वास्तविक कार्य भी स्वयं पूरा करना चाहिए। गुरु साहिब ने 12वीं पउड़ी में समझाया है: 'ऐसी कला न खेडीऐ जित दरगह गइआ हारीऐ॥' आप 21वीं पउड़ी में कहते हैं: 'जिउ साहिब नाल न हारीऐ तेवेहा पासा ढालीऐ॥' चाल वही चलनी चाहिए जिससे प्रभु के घर में स्वीकार होने की जीत प्राप्त हो जाए। गुरु नानक देव जी वाणी के एक अन्य प्रसंग में कहते हैं:

सो जीविआ जिस मन वसिआ सोए॥
नानक अवर न जीवै कोए॥ जे जीवै पत लथी जाए॥
सभ हराम जेता किछ खाए॥[139]

साँस तो सबके चल रहे हैं, परंतु सही अर्थों में जीवित वही है जिसके मन में प्रभु का स्थायी निवास है। ऐसे मनुष्य के अलावा किसी को सजीव नहीं कहा जा सकता। जो लोग अपने मन में नाम को नहीं बसाते, उनकी मालिक के दरबार में कोई इज़्ज़त नहीं होती। उनका जीवन व्यर्थ चला जाता है। कबीर साहिब की वाणी है:

कवन काज सिरजे जग भीतर जनम कवन फल पाइआ॥
भव निध तरन तारन चिंतामन इक निमख न इह मन लाइआ॥
गोबिंद हम ऐसे अपराधी॥
जिन प्रभ जीउ पिंड था दीआ तिस की भाउ भगति नही साधी॥[140]

आप सावधान करते हैं कि जीव को विचार करना चाहिए कि प्रभु ने किस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसे मनुष्य जन्म का सुनहरा अवसर बख़्शा है और उसने इससे क्या लाभ उठाया है? मनुष्य जन्म इसलिए बख़्शा गया है कि जीव प्रभु की भक्ति द्वारा भवसागर से पार हो जाए। परंतु जीव ऐसा अपराधी है कि

शरीर और आत्मा का वरदान बख़्शनेवाले प्रभु को पल भर के लिए भी याद नहीं करता और मनुष्य जन्म को व्यर्थ गँवा बैठता है।

संत-महात्माओं ने इस बात पर अधिक बल दिया है कि मनुष्य जन्म का मुख्य उद्देश्य प्रभु की भक्ति द्वारा, उससे मिलाप करना है। प्रत्येक जीव को स्वयं सचेत होकर इसी जन्म में इस कार्य को पूरा कर लेना चाहिए। जिसने अन्य सभी कार्य किए, परंतु कर्ता की तरफ़ से सौंपा कार्य नहीं किया, उसका जीवन व्यर्थ चला गया। गुरु अर्जुन देव जी उपदेश देते हैं:

इन्ह बिध पासा ढालहो बीर॥
गुरमुख नाम जपहो दिन राती अंत काल नह लागै पीर॥[141]

मेरे भाई! जीवन की बाज़ी जीतना चाहते हो तो गुरु के उपदेशानुसार प्रतिदिन नाम के साथ लिव जोड़कर रखो। इस प्रकार जीवन का मुख्य उद्देश्य भी पूरा हो जाएगा और अंत समय यमों की मार से भी बचाव हो जाएगा।

सलोक और पउड़ी २१

सलोक महला २

एह किनेही आसकी दूजै लगै जाए॥
नानक आसक कांढीऐ सद ही रहै समाए॥
चंगै चंगा कर मंने मंदै मंदा होए॥
आसक एह न आखीऐ जि लेखै वरतै सोए॥१॥

किनेही=कैसी; **कांढीऐ**=कहलाते हैं; **लेखै वरतै**=जो लेखे में पड़ता है।

सरलार्थ: गुरु अंगद देव जी फ़रमाते हैं: यह कैसा प्रेम है कि प्रेमी अपने प्रियतम के अलावा किसी दूसरे के प्रेम में खो जाए? सच्चा प्रेमी वही कहलाता है जो सदा उस एक प्रियतम के प्रेम में समाया रहे।

गुरु साहिब इस विचार के दूसरे पहलू पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं: जो अच्छाई को अच्छाई करके मानता है और बुराई को बुराई करके जानता है, वह तो लेखे में पड़ रहा है, वह आशिक़ नहीं है।

❖ गुरु साहिब प्रभु भक्त के लिए बहुत ऊँचा आदर्श क़ायम कर रहे हैं। आप कहते हैं कि सच्चा प्रेमी वह है जो सदा प्रियतम के प्रेम रंग में रँगा रहे और अपने-आपको प्रियतम में समाकर उसका ही रूप हो जाए। आप कहते हैं कि सुखों को मालिक की मौज मानकर ख़ुश हो जाना और इच्छा के विपरीत हुई बात या दु:खों में मालिक को बुरा-भला कहना शुरू कर देना, प्रेम नहीं। प्रभु का सच्चा भक्त अपनी इच्छा को पूरी तरह प्रभु की इच्छा में लीन कर देता है। प्रभु सुख दे या दु:ख, वह दोनों को प्रभु की मौज समझकर समान भाव से देखता है। वह सुखों की धारा में बहकर प्रियतम को बिसारता नहीं और न ही दु:खों के बहाव में बहकर प्रियतम को भुलाता है। वह प्रियतम के किए पर किंतु-परंतु नहीं करता। उसकी रज़ा को रहमत समझता हुआ सदा प्रसन्न रहता है। वह सहज अवस्था का अधिकारी बन जाता है, जहाँ दु:ख-सुख का दख़ल ही नहीं है।

महला २

सलाम जबाब दोवै करे मुंढहो घुथा जाए॥
नानक दोवै कूड़ीआ थाए न काई पाए॥ २॥

सलाम=सिर झुकाना; **जबाब**='जवाब देना' हुक्म मानने से इनकार करना; **मुंढहो**=शुरू से, पूरी तरह; **घुथा**=गुमराह; **कूड़ीआ**=ग़लत हैं।

सरलार्थ: गुरु अंगद देव जी पिछले श्लोक में प्रकट भाव को 'स्वामी' और 'दास' या 'मालिक' और 'नौकर' के संबंध द्वारा प्रकट करते हुए कहते हैं: जो नौकर मालिक से कुछ मिलने पर सम्मान से सलाम या नमस्कार करता है, परंतु मालिक का हुक्म मिलने पर किंतु-परंतु करता है, वह आरंभ से ही ग़लत मार्ग पर चल रहा है। गुरु साहिब कहते हैं कि मनपसंद वस्तु मिल जाने पर ख़ुश होना और अनचाहा हुक्म मिलने पर किंतु-परंतु करना, दोनों बातें ग़लत हैं। इनमें से कोई भी प्रशंसनीय नहीं हो सकती, भाव ऐसा नौकर कभी भी मालिक की प्रसन्नता का पात्र नहीं बन सकता।

❖ नौकर के लिए मालिक के हुक्म के आगे किंतु-परंतु करना बिलकुल अनुचित है। जिसका आरंभ ही ग़लत हो, उसका अंत कैसे ठीक हो सकता है? मालिक या हाकिम को सबसे अधिक प्रिय क्या लगता है? हुक्म का पालन। मन की मर्ज़ी को मालिक की रज़ा से ऊपर रखना, सेवक के धर्म का उल्लंघन है। हुक्म दु:खदायक हो या सुखदायक, उसे बिना कोई प्रश्न किए स्वीकार करना सेवक का सच्चा धर्म है।

पउड़ी

जित सेविऐ सुख पाईऐ सो साहिब सदा सम्हालीऐ॥
जित कीता पाईऐ आपणा सा घाल बुरी किउ घालीऐ॥
मंदा मूल न कीचई दे लंमी नदर निहालीऐ॥
जिउ साहिब नाल न हारीऐ तेवेहा पासा ढालीऐ॥
किछ लाहे उपर घालीऐ॥ २१॥

जित=जिसकी; **निहालीऐ**=देखना चाहिए; **पासा ढालीऐ**=वह चाल चलें; **लाहे**=लाभ।

सरलार्थ: गुरु नानक देव जी फ़रमाते हैं: जिस मालिक की सेवा भक्ति से सच्चा सुख मिलता है, उसे सदा याद रखना चाहिए। तुम स्वयं ही सोचकर देखो कि जब अपने किए हुए कर्म का फल स्वयं ही भोगना पड़ता है तो बुरा कर्म क्यों किया जाए?

गुरु साहिब उपदेश देते हैं: जो भी काम करें, उसके अंत या परिणाम को मुख्य रखकर करना चाहिए। प्रत्येक कार्य दूरदृष्टि से विचार करके करना चाहिए। जब बुरे काम का अंत हर हालत में बुरा होना है, तो ऐसा काम ही क्यों किया जाए? क्षणभर के लाभ के मोह में फँसकर स्थायी हानि वाला काम क्यों किया जाए?

आप एक अन्य तर्क देते हुए कहते हैं कि अच्छा खिलाड़ी वह है जो एक-आध चाल जीतने के लिए नहीं बल्कि सारी बाज़ी जीतने के लिए चाल चलता है। इसी तरह से खेल वह खेलना चाहिए जिससे मालिक के दरबार में सच्ची विजय प्राप्त हो। झूठी सांसारिक जीत के मोह में

फँसकर, प्रभु की प्रसन्नता की सच्ची विजय को आँख से ओझल नहीं करना चाहिए।

❖ अन्य अनेक पउड़ियों की तरह इस पउड़ी में भी 'कर्म और फल' के सिद्धांत पर प्रकाश डाला गया है। इस वार को साधारण तौर पर देखने से भी स्पष्ट हो जाएगा कि इसमें प्रभु, सतगुरु, उसकी रज़ा, उसके हुक्म और नाम की महिमा के साथ कर्म और फल के नियम के बारे में भी बताया गया है। गुरु साहिब ने वार में बार-बार कर्म और फल के सिद्धांत का उल्लेख किया है।

गुरु साहिब बार-बार सावधान करते हैं कि कर्म करने की आज़ादी फल भोगने के बंधन को जन्म देती है। एक दुकान में कई किस्म के फल हैं। फल अपनी मर्ज़ी के ख़रीद सकते हैं, परंतु उनका स्वाद पूर्व निश्चित है। इसी प्रकार कर्म मनचाहा कर सकते हैं, परंतु कर्म का फल पूर्व निश्चित है। विष बोने पर अमृत के फल की आशा नहीं की जा सकती।

गुरु साहिब दूसरा भाव यह दृढ़ करवाते हैं कि अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के कर्म जीव को आवागमन के चक्कर के साथ बाँध देते हैं। पुण्य कर्मों के फलस्वरूप संसार और स्वर्गों के सुख मिल सकते हैं और पापों के कारण संसार और नरकों के दु:ख भोगने पड़ सकते हैं, परंतु आवागमन से छुटकारा नहीं मिल सकता।

गुरु साहिब उपदेश देते हैं कि सतगुरु की शिक्षा के अनुसार नाम के साथ लिव जोड़नेवाले सच्चे प्रेमी पूर्व कर्मों का नाश करके प्रभु में समाकर उसका रूप हो जाते हैं। मनमत में फँसे जीव विषय-विकारों और तृष्णाओं का शिकार रहते हैं। उनका प्रभु की भक्ति की तरफ़ ध्यान ही नहीं जाता और यदि जाता भी है, तो वे अनेक प्रकार की मनचाही पूजा-भक्ति और कर्मकांडों में लग जाते हैं। इस प्रकार की पूजा-भक्ति का फल अवश्य मिलता है, परंतु उसका फल भोगने के लिए जीव इस रचना का अंग बना रहता है। गुरु साहिब समझाते हैं कि प्रभु ने अपनी रज़ा से यह नियम (विधान) बनाया है कि प्रभु की एकमात्र सच्ची भक्ति शब्द (नाम) का अभ्यास है और जो कोई, जहाँ कहीं, जब भी, कर्म और फल तथा आवागमन का बंधन तोड़कर प्रभु के साथ मिलाप कर

सकेगा, केवल सतगुरु द्वारा समझाई युक्ति के अनुसार नाम के अभ्यास द्वारा ही कर सकेगा।

मध्यकालीन भारतीय समाज में भी मनुष्य की परख जाति, धर्म, धन, बाहरी ज्ञान, स्त्री-पुरुष आदि के आधार पर की जाती थी। गुरु साहिब बार-बार यह भाव दृढ़ करवाते हैं कि कुल मालिक के दरबार में बड़ाई का आधार कर्म, भक्ति भाव और नाम का अभ्यास है। जो लोग जीवन भर सांसारिक भोगों में लिप्त रहते हैं, वे चाहे जितने भी धनवान्, विद्वान् क्यों न हों, उनका संबंध ऊँची से ऊँची जाति से क्यों न हो, उन्हें समाज में ऊँची पदवी क्यों न प्राप्त हो, फिर भी उन्हें प्रभु के दरबार में झूठे ही माना जाता है। वे मनुष्य जीवन की बाज़ी हारकर जाते हैं। इसके विपरीत जो व्यक्ति प्रभु की भक्ति करते हैं, उसके नाम का अभ्यास करते हैं, उनका संबंध निम्न से निम्न समझी जानेवाली जाति से क्यों न हो, वे चाहे कितने ही निर्धन क्यों न हों, चाहे उन्होंने कभी किसी धर्म पुस्तक का एक भी शब्द न सुना हो और बिल्कुल सादगी भरा जीवन क्यों न व्यतीत किया हो, वे प्रभु के दरबार में सच्चे ही कहलाएँगे। उन्हें प्रभु के साथ मिलाप का सौभाग्य प्राप्त हो जाएगा। वे आवागमन के बंधनों से सदा के लिए मुक्त हो जाएँगे और उन्हें परम आनंद की सहज अवस्था प्राप्त हो जाएगी।

सलोक और पउड़ी २२

सलोक महला २

चाकर लगै चाकरी नाले गारब वाद॥
गला करे घणेरीआ खसम न पाए साद॥
आप गवाए सेवा करे ता किछ पाए मान॥
नानक जिस नो लगा तिस मिलै लगा सो परवान॥१॥

गारब=अहंकार; **वाद**=तर्क-वितर्क, दलीलबाज़ी; **घणेरीआ**=अत्यधिक; **खसम**... **साद**=मालिक की प्रसन्नता का स्वाद नहीं प्राप्त कर सकता।

सरलार्थ: गुरु अंगद देव जी पिछली पउड़ी के भाव को आगे बढ़ाते हुए उपदेश देते हैं: एक तरफ़ सेवक सेवा में लगे और दूसरी तरफ़

अहंकारवश मालिक के साथ वाद-विवाद या झगड़ा करे या बातूनी होकर मालिक के सामने बोलता ही जाए, तो उसे मालिक की प्रसन्नता का स्वाद प्राप्त नहीं हो सकता। इसके विपरीत यदि वह आपाभाव या अहंकार एक तरफ़ रखकर प्रेम और नम्रता से मालिक की सेवा करे, तो उसे कुछ न कुछ सम्मान अवश्य मिलेगा। सेवा या भक्ति तभी सफ़ल है, यदि सेवक का स्वामी के साथ यानी भक्त का भगवान् के साथ मिलाप हो जाए।

❖ गुरु साहिब समझा रहे हैं कि सच्चा सेवक अपनी इच्छा को मालिक की रज़ा में मिटा देता है। वह मालिक को पसंद आनेवाले कार्य करता है। इससे उसे मालिक की ख़ुशी प्राप्त होती है। जो सेवक मालिक की बराबरी करता है, उसके साथ तर्क-वितर्क, सवाल-जवाब करता है, उसे कुछ नहीं मिलता। गुरु नानक देव जी की वाणी है:

चाकर कहीऐ खसम का सउहे उतर दे॥
वजहो गवाए आपणा तखत न बैसह से॥[142]

जो सेवक मालिक के हुक्म पर सवाल-जवाब करता है, तर्क-वितर्क करता है, मालिक उस पर विश्वास नहीं करता। उसे ऊँची पदवी प्राप्त नहीं हो सकती। गुरु नानक देव जी का कथन है:

ऐसा लाला मेरे लाल को सुण खसम हमारे॥
जिउ फुरमावह तिउ चला सच लाल पिआरे॥[143]

आप फ़रमाते हैं: मेरे प्रियतम! मैं तेरा दास हूँ। तू जो भी हुक्म दे, मुझे स्वीकार है। गुरु नानक देव जी फ़रमाते हैं:

लालै गारब छोडिआ गुर कै भै सहज सुभाई॥
लालै खसम पछाणिआ वडी वडिआई॥
खसम मिलिऐ सुख पाइआ कीमत कहण न जाई॥
लाला गोला खसम का खसमै वडिआई॥[144]

जो सेवक गुरु के उपदेशानुसार अहंकार का त्याग कर देता है, उसे मालिक से मिलने की बड़ाई मिल जाती है और वह सहज सुख का अधिकारी बन जाता है।

महला १

जो जीइ होए सो उगवै मुह का कहिआ वाउ॥
बीजे बिख मंगै अंम्रित वेखहो एह निआउ॥ २॥

जीइ=मन में; **उगवै**=अंकुरित हो जाता है; **वाउ**=हवा भाव व्यर्थ; **निआउ**=न्याय।

सरलार्थ: गुरु नानक देव जी समझाते हैं: जिस प्रकार के भाव या विचार का बीज मन में होता है, उसी रूप में अंकुरित हो जाता है। यदि केवल कहने के लिए कोई बात कह दी जाए, परंतु हृदय में वह भाव न हो, तो वह निष्फल या व्यर्थ है। गुरु साहिब कहते हैं: कितने आश्चर्य की बात है कि लोग विष का बीज बोते हैं और उससे अमृत के फल की आशा रखते हैं।

❖ ***जो जीइ होए सो उगवै मुह का कहिआ वाउ॥***
बीजे बिख मंगै अंम्रित वेखहो एह निआउ॥

इस विचार के दो पहलू हैं। पहला यह कि महिमा बातों की नहीं, भाव और नम्रता की है। यदि मन में अहंकार और घृणा के भाव हैं, परंतु बातें नम्रता और प्रेम दिखानेवाली करते हैं तो उनका कोई लाभ नहीं। दूसरा पहलू यह है कि फल कर्मों के अनुसार मिलता है, मन की इच्छा के अनुसार नहीं।

बाबा फ़रीद का कलाम है:

फरीदा लोड़ै दाख बिजउरीआं किकर बीजै जट॥
हंढै उंन कताइदा पैधा लोड़ै पट॥[145]

कितनी आश्चर्यजनक बात है कि किसान बोता तो कीकर (बबूल) है, परंतु उस कीकर से बढ़िया किस्म के अंगूर लेना चाहता है; वह कातता तो ऊन है, परंतु पहनना रेशम चाहता है।

महला २

नाल इआणे दोसती कदे न आवै रास॥
जेहा जाणै तेहो वरतै वेखहो को निरजास॥
वसतू अंदर वसत समावै दूजी होवै पास॥
साहिब सेती हुकम न चलै कही बणै अरदास॥
कूड़ कमाणै कूड़ो होवै नानक सिफत विगास॥ ३॥

इआणे=अज्ञानी; **कदे...रास**=कभी सफल नहीं होती; **निरजास**=निर्णय; **हुकम**=ज़ोर; **विगास**=विस्तार।

सरलार्थ: गुरु अंगद देव जी उपदेश देते हैं: अज्ञानी की मित्रता से कुछ लाभ नहीं होता, क्योंकि जैसा उसका अपना ज्ञान है, वैसा ही उसका व्यवहार होता है। नि:संदेह स्वयं इस बात का निर्णय करके देख लो। जब आत्मा परमात्मा में समा जाती है, तो वियोग या द्वैत का नाश हो जाता है। मालिक से कुछ भी बलपूर्वक नहीं ले सकते, उसके आगे विनती ही की जा सकती है। गुरु साहिब समझाते हैं: यदि कूड़ के मोह में फँसे रहोगे तो अंदर कूड़ ही कूड़ भरता जाएगा। इसके विपरीत यदि अपने अंदर प्रभु की महिमा का गुण भरना शुरू करेंगे तो धीरे-धीरे वह गुण विकसित होता जाएगा।

❖ ***नाल इआणे दोसती कदे न आवै रास॥***
जेहा जाणै तेहो वरतै वेखहो को निरजास॥

गुरु साहिब सावधान करते हैं कि नासमझ के साथ दोस्ती कभी सफल नहीं होती।

वसतू अंदर वसत समावै दूजी होवै पास॥—वर्तमान अवस्था में जीवात्मा द्वैत में विचरण कर रही है। जब आत्मा, परमात्मा में अभेद हो जाती है तो यह पूर्ण अद्वैत या एकता में पहुँच जाती है। इसी भाव को इस प्रकार भी प्रस्तुत किया जाता है कि आत्मा का परमात्मा से मिलाप तभी संभव है, जब दोनों के बीच से दुई की भावना दूर हो जाती है।

साहिब सेती हुकम न चलै कही बणै अरदास॥—वह सर्वशक्तिमान् कर्ता अपनी रज़ा का मालिक है। निर्बल जीव बलपूर्वक उससे कुछ भी नहीं

करवा सकता। जीव को यही शोभा देता है कि वह प्रेम और नम्रता के भाव से उसके आगे दया-मेहर के लिए विनती करता रहे।

कूड़ कमाणै कूड़ो होवै नानक सिफत विगास॥—गुरु साहिब फ़रमाते हैं कि यदि मन के बर्तन में माया के मोह की गंदगी ही भरते जाएँगे, तो बर्तन कभी साफ़ नहीं होगा। इसके विपरीत यदि मन में मालिक की महिमा, उसकी भक्ति का अमृत भरते जाएँगे तो एक दिन वह गुण विकसित हो जाएगा। फिर मन में मालिक का प्रेम समा जाएगा और वह प्रसन्न हो जाएगा।

महला २

नाल इआणे दोसती वडारू सिउ नेह॥
पाणी अंदर लीक जिउ तिस दा थाउ न थेह॥ ४॥

वडारू=धनी, शेख़ीबाज़, ऊँचा; **थाउ न थेह**=नामो निशान मिटाना।

सरलार्थ: गुरु अंगद देव जी कहते हैं: नासमझ के साथ दोस्ती और अपने से बड़े के साथ प्रेम, पानी पर खींची लकीर के समान होता है। पानी में ज्यों ही लकीर खींचते हैं, उसी समय मिट जाती है। उसी तरह नासमझ और अपने से बड़े की दोस्ती दूर तक नहीं निभती।

महला २

होए इआणा करे कंम आण न सकै रास॥
जे इक अध चंगी करे दूजी भी वेरास॥ ५॥

आण...रास=ठीक तरह से नहीं कर सकता; **वेरास**=बिगाड़ देता है।

सरलार्थ: अज्ञानी किसी भी कार्य को ठीक प्रकार से नहीं कर सकता। यदि वह कोई एक कार्य अच्छी तरह से कर भी ले, तो दूसरा कार्य बिगाड़ देता है। अर्थात् अज्ञानी से किसी भी कार्य को ठीक ढंग से करने की आशा नहीं रखनी चाहिए।

❖ गुरु अंगद देव जी इन श्लोकों द्वारा दोहरा भाव प्रकट कर रहे हैं। पहला यह कि स्थायी वस्तु, व्यक्ति या शक्ति की संगति करनी चाहिए, सामयिक और आरज़ी वस्तु या व्यक्ति की नहीं। दूसरा भाव यह प्रकट करते हैं कि विद्वान् व्यक्ति की संगति लाभदायक होती है और अज्ञानी, गुणहीन व्यक्ति की संगति सदैव हानिकारक होती है।

पउड़ी

चाकर लगै चाकरी जे चलै खसमै भाए॥
हुरमत तिस नो अगली ओह वजहो भी दूणा खाए॥
खसमै करे बराबरी फिर गैरत अंदर पाए॥
वजहो गवाए अगला मुहे मुह पाणा खाए॥
जिस दा दिता खावणा तिस कहीऐ साबास॥
नानक हुकम न चलई नाल खसम चलै अरदास॥ २२॥

हुरमत=मान-सम्मान; **अगली**=बहुत अधिक; **वजहो**=तनख़्वाह, वेतन; **गैरत**=शर्मिंदगी; **पाणा**=जूते।

सरलार्थ: गुरु नानक देव जी फ़रमाते हैं कि जो नौकर मालिक के हुक्म के अनुसार नौकरी या सेवा में लगा रहता है, उसे मालिक के दरबार में सम्मान भी बहुत मिलता है और वज़ीफ़ा या तनख़्वाह भी दुगुनी प्राप्त होती है। इसके विपरीत यदि वह मालिक की बराबरी करता है, तो उसे मालिक की नाराज़गी का सामना करना पड़ता है। ऐसे नौकर को पहली तनख़्वाह भी नहीं मिलती तथा उसे अनादर ही प्राप्त होता है।

गुरु साहिब उपदेश देते हैं: जिस मालिक का दिया हम खा रहे हैं, उसका गुणगान करना चाहिए। दाता द्वारा बख़्शी दातों के लिए धन्यवाद करना चाहिए। उस सर्वसमर्थ कर्ता के सामने अपनी इच्छा या ताक़त काम नहीं करती। उससे केवल प्रार्थना की जा सकती है।

❖ पीछे कुछ प्रसंगों में निर्मल रहनी और नाम के अभ्यास आदि की महिमा की गई है। इस पउड़ी में गुरु साहिब यह भाव दृढ़ करवाते हैं कि निर्बल और

अज्ञानी जीव कुल मालिक से अपनी बल बुद्धि द्वारा कुछ भी नहीं ले सकता। वह सर्वशक्तिमान् से यदि कुछ प्राप्त कर सकता है, तो केवल विनती करके ही कर सकता है।

सलोक और पउड़ी २३

सलोक महला २

एह किनेही दात आपस ते जो पाईऐ॥
नानक सा करमात साहिब तुठै जो मिलै॥ १॥

महला २

एह किनेही चाकरी जित भउ खसम न जाए॥
नानक सेवक काढीऐ जि सेती खसम समाए॥ २॥

सरलार्थ: गुरु अंगद देव जी भी गुरु नानक देव जी द्वारा पउड़ी में प्रकट भाव का विस्तार करते हुए कहते हैं: जो वस्तु अपने उद्यम से प्राप्त की जाए, उसे दाता की दात कैसे कह सकते हैं? वास्तविक बख़्शिश वही है जो मालिक के प्रसन्न होने से प्राप्त हो। आप दूसरे श्लोक में कहते हैं: वह कैसी सेवा है जिससे मालिक का भय दूर न हो जाए? सच्चा सेवक तो उसे ही कहा जा सकता है, जो मालिक में समा जाए।

❖ गुरु साहिब दोनों श्लोकों में परमार्थ के दो महत्त्वपूर्ण पहलुओं पर प्रकाश डाल रहे हैं। आप पहले श्लोक में यह रहस्य समझाते हैं कि जो चीज़ किसी को उसके गुण, कर्म, स्वभाव के कारण दी जाती है, उस पर उसका अधिकार होता है। उसमें देनेवाले की दया-मेहर नहीं होती। वास्तविक दात, बख़्शिश या रहमत वही है, जो किसी को हर तरह की कमज़ोरियों, त्रुटियों और पापों के बावजूद दी जाए।

गुरु साहिब समझा रहे हैं कि यदि प्रभु जीव के गुण, कर्म और स्वभाव को देखकर कुछ देना चाहे तो संसार का कोई भी जीव किसी तरह की बख़्शिश का

अधिकारी नहीं है। बादशाह भिखारी को दान देते समय उसके गुण-अवगुण नहीं देखता। वह दान देता है क्योंकि दान देना उसका स्वभाव है। सूर्य में से प्रकाश अपने-आप झरता है, बर्फ़ का स्वभाव ही शीतलता प्रदान करना है। इसी तरह वह दयालु प्रभु दया का पुँज है। वह प्रेमरूप है, दयारूप है। वह जिसे कुछ देता है, उसके अवगुणों और त्रुटियों के बावजूद देता है। जब उसकी अपार कृपा होती है तो चोर, डाकू, क़साई और दुराचारी भी महात्मा बन जाते हैं।

गुरु साहिब दूसरा भाव यह प्रकट कर रहे हैं कि भय का संबंध द्वैत के साथ है। प्रभु का सच्चा भक्त उसमें समाकर उसका रूप हो जाता है। इस प्रकार वह द्वैत में से पूर्ण एकता में पहुँच जाता है। इससे स्वामी तथा सेवक का भेद समाप्त हो जाता है और हर प्रकार के भय से मुक्ति प्राप्त हो जाती है। गुरु नानक देव जी वाणी के एक अन्य प्रसंग में इस विचार को इस प्रकार प्रकट करते हैं:

मन रे सच मिलै भउ जाए॥
भै बिन निरभउ किउ थीऐ गुरमुख सबद समाए॥[146]

गुरु साहिब बहुत सुंदर ढंग से समझाते हैं कि शुरुआत भय से ही होती है। प्रभु का भक्त, उन कार्यों से डरता है जो प्रभु को पसंद नहीं हैं। इसलिए नहीं कि उसे कोई सज़ा मिलेगी, बल्कि इसलिए कि ऐसा करने से उसका प्रियतम नाराज़ हो जाएगा। वह बुरे कर्मों से बचता हुआ, गुरु के उपदेशानुसार सुरत को शब्द में लीन कर देता है। शब्द भक्त की सुरत को प्रभु में अभेद कर देता है जिससे वह निर्भय प्रभु की तरह निर्भय हो जाता है। गुरु रामदास जी का कथन है:

जो हर नाम धिआवह तिन डर सट घतिआ॥
गुरमती देवै आप गुरमुख हर जपिआ॥[147]

जो सतगुरु के उपदेशानुसार नाम के साथ लिव जोड़ लेते हैं, वे प्रभु में समाकर हर प्रकार के भय से सदा के लिए मुक्त हो जाते हैं। गुरु अर्जुन देव जी का कथन है:

निरभउ जपै सगल भउ मिटै॥ प्रभ किरपा ते प्राणी छुटै॥
जिस प्रभ राखै तिस नाही दूख॥ नाम जपत मन होवत सूख॥[148]

पउड़ी

नानक अंत न जापन्ही हर ता के पारावार॥
आप कराए साखती फिर आप कराए मार॥
इकन्हा गली जंजीरीआ इक तुरी चड़ह बिसीआर॥
आप कराए करे आप हउ कै सिउ करी पुकार॥
नानक करणा जिन कीआ फिर तिस ही करणी सार॥ २३॥

पारावार=इस किनारे से उस किनारे; **साखती**=सृजन; **कराए मार**=मार देता है, नष्टकर देता है; **जंजीरीआ**=ज़ंजीर; **तुरी**=घोड़ों पर; **बिसीआर**=बहुत से।

सरलार्थ: उस अनंत प्रभु का अंत पाना असंभव है। 'पारावार' समुद्र को भी कहते हैं। वह प्रभु अथाह समुद्र है जिसका न कोई आदि है न अंत। सृष्टि का सृजन करनेवाला भी वही है और इसका संहार करनेवाला भी वही है। उस कर्ता की लीला न्यारी है। उसके हुक्म से कई जीवों के गले में ज़ंजीरें पड़ी हुई हैं और कुछ को अनेक घोड़े सवारी के लिए प्राप्त हैं। जो कुछ करता है, वह सर्वशक्तिमान् कर्ता पुरुष करता है, तो फिर उसके किए के विरुद्ध किसके आगे पुकार या फ़रियाद की जाए? जो प्रभु सृष्टि की रचना करता है, सृष्टि की सँभाल भी वह स्वयं ही करता है।

❖ ***नानक अंत न जापन्ही हर ता के पारावार॥***
आप कराए साखती फिर आप कराए मार॥

गुरु साहिब फ़रमाते हैं: वह कर्ता अनंत-अपार है। उसके सामर्थ्य का आदि-अंत जान पाना असंभव है। रचना करनेवाला भी वही है और रचना का अंत करनेवाला भी वही है। गुरु रामदास जी का कथन है: 'आप कराए साखती पिआरा आप मारे मर जाह॥'[149] वह स्वयं ही सृजन करता है और स्वयं ही नष्ट कर देता है।

जे देह वडिआई ता तेरी वडिआई इत उत तुझह धिआउ ॥
नानक के प्रभ सदा सुखदाते मै ताण तेरा इक नाउ ॥[153]

गुरु साहिब उपदेश देते हैं कि जो कुछ होता है, उस कर्ता का किया होता है। वह कर्ता, दयालु और क्षमा का पुँज है। वह जो कुछ भी करता है, जीव की भलाई के लिए करता है। अज्ञानी जीव के लिए कर्ता के किए का रहस्य समझ पाना असंभव है। इसलिए उसकी दया पर विश्वास रखते हुए सदा उसे ध्यान में रखना चाहिए, उसके नाम के साथ जुड़े रहना चाहिए।